वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं.२५३

# भगवान महावीर

*लेखिका-*

**जैनसमाज की सर्वोच्च साध्वी, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका**
**पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी**

जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर

प्रकाशक:—
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

| प्रथम संस्करण | १ फरवरी २००४ | मूल्य |
|---|---|---|
| २२०० प्रतियाँ | (माघ शु. ११) | २०/- |

## दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

### वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रन्थों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

**संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत:-**
परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

**समायोजन:-**
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

**निर्देशन:-**
धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी

**सम्पादक:-**
कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

**सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन**

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

# सम्पादकीय

**-कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन**

जिस हस्तिनापुर में इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कार्यकलाप चल रहे हैं, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी,दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकों से जुड़ी वह हस्तिनापुर एक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। सन् १९७२ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान दिल्ली से इस संस्था का जन्म हुआ।

सन् १९७५ से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, कमरे, फ्लैट, कोठियां आदि बन चुके हैं, निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन होते रहते हैं। पू. माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों एवं धर्मप्रभावना के समाचारों से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन २५ वर्षों से निराबाध गति से चल रहा है। सन् १९७४ में स्थापित संस्थान के अंतर्गत वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला से २५० से भी अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ आचार्य श्री वीरसागर विद्यापीठ, जम्बूद्वीप पारमार्थिक औषधालय, जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक आदि के अंतर्गत सभी धार्मिक शैक्षणिक कार्यक्रम चलते हैं। सन् १९७५ में प्रारम्भ पंचकल्याणकों में अब तक पाँच पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं प्रति ५ वर्षों में होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव में से ३ महोत्सव हो चुके हैं।

इस संस्थान द्वारा जहाँ पू. माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा उद्घाटित ज्ञानज्योति रथ का १०४५ दिनों तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण एवं हस्तिनापुर में उसकी अखण्ड स्थापना हुई वहीं वर्तमान में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर जैनधर्म की प्राचीनता, अहिंसा-शाकाहार एवं २४ तीर्थंकरों के अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् भगवान ऋषभदेव के दीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक से पवित्र प्रयागजैन तीर्थ पर स्थापित हो गया है। जम्बूद्वीप स्थल पर भव्य दीक्षाएं भी हुई हैं। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान से ४ फरवरी सन् २००० को वर्तमान प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटित "भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव" सम्पूर्ण देश एवं विदेशों में मनाया गया। जिसके अंतर्गत जगह-जगह अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तम्भ रचना आदि कार्यक्रम हुए। इसी संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से फरवरी २००१ में प्रयाग तीर्थ क्षेत्र "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली" का नवनिर्माण कर दीक्षा मंदिर, कैलाश पर्वत रचना, समवसरण मंदिर, दीक्षाकल्याणक तपोवन, कीर्तिस्तम्भ रचना आदि निर्माण कार्य सम्पन्न किए गए हैं तथा भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) का विकास भी संस्थान द्वारा किया जा रहा है। वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का यह पुष्प 'भगवान महावीर' ग्रन्थ जगत् को सुरभित करे यही मंगलकामना है।



# आद्य वक्तव्य

**-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर**

जैनशासन के २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने कुण्डलपुर के महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के पवित्र गर्भ से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को जन्म लेकर भारत की धरती को गौरवान्वित किया था। तब स्वर्ग से इन्द्रों ने आकर जो अलौकिक उत्सव मनाया था उसका वर्णन शब्दों में कर पाना यद्यपि अशक्य है तथापि समय-समय पर आचार्यों ने अपनी लेखनी को उनका जीवन दर्शन लिखकर शुद्ध किया है।

भगवान महावीर के बाद इस पृथ्वी पर कोई तीर्थंकर उत्पन्न नहीं हआ, यही कारण है कि वर्तमान में भी उन्हीं का शासनकाल माना जाता है। अन्य मतावलम्बी तो जैनधर्म की पहचान ही भगवान महावीर से करते हैं जबकि उनसे पूर्व हुए २३ तीर्थंकरों ने युगानुयुग से पंच महाव्रतों का पालन कर अपनी जितेन्द्रियता से जैनधर्म को सार्वभौमकिता प्रदान की है उसी श्रृँखला को महावीर स्वामी ने पुनरुद्धारक (Reviver) के रूप में प्रकाशित किया है।

जैनधर्म की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रस्तुत पुस्तक में उन भगवान महावीर के सर्वतोमुखी जीवन को अपनी सरल लेखनी में प्रदर्शित किया है। इसके द्वारा पाठकों को निश्चितरूप से दिगम्बर जैन परम्परानुसार सम्पूर्ण सामग्री एक जगह उपलब्ध हो रही है। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव सन् २००० से २००१ तक, तीर्थंकर महावीर का २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव सन् २००१ से २००२ तक एवं २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से पूरे देश में मनाए जा चुके हैं।

नित्य नवीन योजनाओं को मूर्तस्वरूप प्रदान करने वाली पूज्य माताजी का अदम्य उत्साह एवं आत्मबल देखकर हम सभी को प्रेरणा प्राप्त होती है कि इस आयु में जब पूज्य माताजी इतने उत्साह और लगन से देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में लगी रहती हैं तो हमें भी अवश्य इनका अनुसरण करते रहना है।

प्रस्तुत पुस्तक में पूज्य माताजी ने भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवनवृत्त को लेखनीबद्ध किया है तथा अन्य विद्वानों के द्वारा लिए गए आलेख भी इसमें प्रकाशित हैं। सम्पूर्ण पुस्तक को पढ़कर भगवान महावीर के जीवन से कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करें, यही स्वाध्याय का फल है।

# नहीं लेखनी लिख सकती है, माता की स्वर्णिम गाथा

**-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती**

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रही पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके त्यागमयी जीवन के पचास स्वर्णिम वर्षों की पूर्णता पर विनम्र विनयांजलि रूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

*१. जन्म, वैराग्य और दीक्षा* — २२ अक्टूबर सन् १९३४, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र १८ वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् १९५२ में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृह त्याग के नियमों को धारण कर लिया। जैनेश्वरी दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् १९५३ में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् १९५५ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' जी ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् १९५६ में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके "आर्यिका ज्ञानमती" नाम प्राप्त किया।

*२. अध्ययन और अध्यापन* — ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रुपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री,



तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

*३. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से* —भगवान महावीर के पश्चात् २५०० वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् १९५४ में सहस्रनाम के १००८ मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् १९६९-७० में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज २५०की संख्या को पार कर चुके हैं। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास-बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास चारों अनुयोगों रूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है।

धन्य है ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

*४. सिद्धांत चक्रेश्वरी* —वर्तमान में पू. माताजी जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' के लेखन में संलग्न हैं। १० पुस्तकों की टीका वह लिख चुकी हैं, जिसमें से प्रथम पुस्तक हिन्दी टीका सहित प्रकाशित भी हो चुकी है। ११वीं पुस्तक की टीका का लेखन जारी है। आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्ड रूप द्वादशांग रूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके सार रूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये

थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणि रूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। १००० वर्ष पूर्व आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हो रहा है।

*५. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर* —जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वतवर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् १९७८ में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग १०० विद्वानों का विद्वत प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

*६. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार* —सन् १९८५ में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ। पुनः अनेक संगोष्ठियां सम्पन्न होती रहीं और सन् १९९८ में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। ११ जून २००० को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुंचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ प्रस्तुत हो चुकी हैं।

*७. विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ* —मात्र कक्षा-तीन तक के लौकिक अध्ययन को प्राप्त विदुषी माता जी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वता के सम्मान हेतु अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा ५ फरवरी १९९५ को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया।

*८. इतिहास भी परिवर्तन के लिए बाध्य हुआ* —सन् १९९२ से पूज्य माताजी की दृष्टि आधुनिक शिक्षाजगत में पढ़ायी जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रान्त विषय वस्तु पर गयी तो 'भगवान महावीर जैनधर्म के



संस्थापक हैं' इत्यादि भ्रांतियों को वहाँ देखकर उनका हृदय अत्यंत उद्वेलित हो उठा। फलस्वरूप प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, निदेशक-NCERT इत्यादि से उनकी प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा शिक्षाजगत तक यह संदेश पहुंचा और दस वर्षों के अथक प्रयास द्वारा पाठ्य पुस्तकों में संशोधन का क्रम प्रारंभ हो सका और वर्तमान में एन्सीईआरटी जैनधर्म संबंधी सही तथ्यों से युक्त राष्ट्रीय पाठ्य पुस्तक तैयार करने में संलग्न है, यह बड़े ही गौरव की बात है। यथासंभव संशोधन होते ही संपूर्ण जैनसमाज की ओर से केन्द्र सरकार का स्वागत होना चाहिए।

*९. तीर्थ विकास की भावना* —तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी महान संस्कृति की धरोहर हैं, अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर' में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् १९९३ से ९५ तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमल मंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के सुफल हैं। कितने ही अन्य स्थानों पर भी अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। वर्तमान में भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, त्रिकाल चौबीसी मंदिर, नंद्यावर्त महल सहित भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा की स्थापना आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर किये जा रहे हैं तथा ७ से १२ फरवरी २००३ तक भव्य 'पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महाकुम्भमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम वहां सम्पन्न हुआ।

*१०. विश्व में अनोखी १०८ फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा* — विश्व के

अप्रतिम आश्चर्य के रूप में १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से प्रारंभ हो चुका है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

*११. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ*—शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं द्वारा वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्त रूप ले रही है, जिसमें 'नवग्रह शांति मंदिर' का विशेष निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशानुसार सम्पन्न किया जायेगा।

*१२. धर्मप्रभावना के विविध आयाम*—जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का निष्पादन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली में उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्ड रूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् १९९८ में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् आगामी शरद पूर्णिमा, २१ अक्टूबर २००२ को तपस्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'केवलज्ञान कल्याणक मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिलाता रहेगा।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष (प्रधानमंत्री श्री अटल जी द्वारा उद्घाटित) भी उनकी प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। आस्था चैनल एवं जैन टी.वी द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर



जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित किये गये एवं किये जा रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित किये हुए है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य इन ५० वर्षों में पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

*१३. संघर्ष विजेत्री*—पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया-प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है। किसी भी संस्था, तीर्थ, चंदे आदि की दानराशि को अपनी संघ व्यवस्था में समाहित न करने का उनका नियम है। ५० वर्षों से इस नियम का पालन करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर वे अडिग हैं। यही कारण है कि उन्हें लम्बी-लम्बी यात्राएं कराने में अपना कर्तव्यपालन करने वाले संघपति श्रावक भी अपना सौभाग्य समझते हैं।

*१४. अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे*—जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा आयु है, अर्थात् १८ वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर लिया। यही कारण है कि २१ अक्टूबर २००२ की शरदपूर्णिमा 'स्वर्णिम शरद पूर्णिमा' बनकर आई जब आपने अपने त्यागमयी जीवन के ५० वर्ष पूर्ण किये।

ऐसी चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में भावभीनी विनयांजलि है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें अमृत महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो तथा आपके द्वारा इसी प्रकार से नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

# विषय-दर्पण


| क्र.स. | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. | मंगलाचरण | १ |
| २. | भगवान महावीर | ४ |
| ३. | जन्मभूमि कुण्डलपुर | ४ |
| ४. | गर्भ कल्याणक | ६ |
| ५. | सोलह स्वप्न | ६ |
| ६. | देवियों द्वारा माता की सेवा | ११ |
| ७. | जन्मकल्याणक | १६ |
| ८. | जन्माभिषेक | २३ |
| ९. | कुण्डलपुर में जन्ममहोत्सव | २८ |
| १०. | सन्मति नामकरण | ३१ |
| ११. | संगमदेव द्वारा परीक्षा | ३२ |
| १२. | भगवान का वैराग्य | ३५ |
| १३. | दीक्षाकल्याणक | ३७ |
| १४. | भगवान का प्रथम आहार | ४६ |
| १५. | भगवान पर उपसर्ग | ४६ |
| १६. | भगवान के पाँच नाम | ५१ |
| १७. | चंदना के बंधन टूट गये | ५४ |
| १८. | केवलज्ञान कल्याणक | ५८ |
| १९. | भगवान महावीर का समवसरण | ५८ |
| २०. | समवसरण में आठ भूमि-तीन कटनी | ६८ |
| २१. | चौंतीस अतिशय | ६९ |
| २२. | विपुलाचल पर प्रथम दिव्यध्वनि | ७२ |
| २२. | भगवान महावीर के पूर्वभव | ७९ |
| २४. | पुण्यशाली मृगेन्द्र | ८३ |
| २५. | सिंहकेतु देव | ८५ |





| | | |
|---|---|---|
| २६. | विद्याधर राजा कनकोज्ज्वल | ८७ |
| २७. | सातवें स्वर्ग में देव | ८८ |
| २८. | राजा हरिषेण | ८९ |
| २९. | दशवें स्वर्ग में देव | ९१ |
| ३०. | प्रियमित्र चक्रवर्ती | ९२ |
| ३१. | बारहवें स्वर्ग में देव | ९५ |
| ३२. | नंदन महाराज | ९७ |
| ३३. | अच्युतेन्द्र | ९८ |
| ३४. | पंचकल्याणक वैभव | ९९ |
| ३५. | भगवान महावीर निर्वाणभूमि पावापुर जलमंदिर | १०२ |
| ३६. | श्रुतज्ञान के भेद | १०५ |
| ३७. | त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम | १०६ |
| ३८. | धर्मतीर्थ की व्युच्छित्ति आदि | १०७ |
| ३९. | भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर एक वास्तविक तथ्य | ११४ |
| ४०. | वैशाली भी तो असली वैशाली नहीं है | १२५ |
| ४१. | भगवान महावीर के समय गणतंत्र शासन नहीं था | १३२ |
| ४२. | दया के देवता का अवतरण | १३७ |
| ४३. | कुण्डलपुर या वैशालीः एक अनुचिंतन | १४२ |
| ४४. | भगवान महावीर के जन्मस्थान का निर्णय दिगम्बर मतानुसार हो | १४९ |
| ४५. | वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकरों की जन्मभूमियाँ | १५४ |

# भगवान ऋषभदेव एक दृष्टि में

जन्मभूमि—अयोध्या (उत्तरप्रदेश)

*पिता* —महाराज नाभिराय *माता* —महारानी मरुदेवी
*वर्ण* —क्षत्रिय *गोत्र* —काश्यप
*वंश* —इक्ष्वाकु *देहवर्ण* —तप्त स्वर्ण सदृश
*चिन्ह* —बैल *आयु* —चौरासी लाख पूर्व वर्ष
*अवगाहना* —दो हजार हाथ *गर्भ* —आषाढ़ कृ. २
*जन्म* —चैत्र कृ. ९ *तप* —चैत्र कृ. ९
*दीक्षावन* —सिद्धार्थ प्रयाग *दीक्षावृक्ष* —वटवृक्ष (अक्षयवट)
*प्रथम आहार* —हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस द्वारा (इक्षुरस)
*केवलज्ञान वनं एवं वृक्ष* —पुरिमतालपुर उद्यान (प्रयाग) एवं वटवृक्ष
*केवलज्ञान* —फाल्गुन कृ. ११ *मोक्ष* —माघ कृ. १४
*मोक्षस्थल* —कैलाशपर्वत

## समवसरण में चतुर्विध संघ

*गणधर* —श्री वृषभसेन आदि ८४ *मुनि* —चौरासी हजार
*गणिनी* —आर्यिका ब्राह्मी *आर्यिका* —तीन लाख पचास हजार
*श्रावक* —तीन लाख *श्राविका* —पांच लाख
*जिनशासन यक्ष* —गोमुख देव *यक्षी* —चक्रेश्वरी देवी

भगवान ऋषभदेव वर्तमान वीर नि. सं. २५२७ से ३९४८७ वर्ष कम, सौ लाख करोड़ सागर अर्थात् एक कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पहले मोक्ष गए हैं। इससे चौरासी लाख पूर्व वर्ष पहले जन्में हैं।

*अर्घ्य —(चाल —नंदीश्वर पूजा)*

जल चंदन अक्षत पुष्प, नेवज आदि लिया।
वर ज्ञानमती निधि हेतु, अर्घ्य समर्प्य किया।।
श्री आदिनाथ जिनराज, आदी तीर्थंकर।
मैं पूजूँ भक्ति समेत, तुमको क्षेमंकर।।

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवतीर्थंकराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।



# भगवान महावीर स्वामी एक दृष्टि में

जन्मभूमि-कुण्डलपुर जिला नालंदा (बिहार)

*पिता* —महाराज सिद्धार्थ *माता* —महारानी प्रियकारिणी (त्रिशला)
*वर्ण* —क्षत्रिय *गोत्र* —काश्यप
*वंश* —नाथवंश *देहवर्ण* —तप्त स्वर्ण सदृश
*चिन्ह* —सिंह *आयु* —बहत्तर वर्ष
*अवगाहना* —सात हाथ (अरत्नि) *गर्भ* —आषाढ़ शु. ६
*जन्म* —चैत्र शु. १३ *तप* —मगसिर कृ. १०
*दीक्षावन* —षण्डवन (मनोहरवन) *दीक्षावृक्ष* —साल वृक्ष
*प्रथम आहार* — कूल ग्राम के राजा वकुल द्वारा (खीर)
*विशेष आहार* — कौशाम्बी में महासती चंदना द्वारा (खीर)
*केवलज्ञान वनं एवं वृक्ष* —षण्डवन (मनोहरवन) एवं साल वृक्ष
*केवलज्ञान* — वैशाख शु.१० (ऋजुकूला नदी के तट पर)
*वीरशासन जयंती* —(दिव्यध्वनि दिवस) श्रावण कृ. १
*मोक्ष कल्याणक* —कार्तिक कृ. अमावस्या, *मोक्ष स्थल* —पावापुरी

## समवसरण में चतुर्विध संघ

*गणधर* —श्री इन्द्रभूति आदि ११ *मुनि* —चौदह हजार
*गणिनी* —आर्यिका चंदना *आर्यिका* —छत्तीस हजार
*श्रावक* —एक लाख *श्राविका* —तीन लाख
*जिनशासन यक्ष* —मातंग देव *यक्षी* —सिद्धायिनी देवी

२६०२ वर्ष पूर्व भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ। भगवान महावीर स्वामी वर्तमान वीर नि. सं. से २५२६ वर्ष पहले मोक्ष गए हैं।

*—अर्घ्य—*

त्रिशला नंदन, शत शत वन्दन, शत शत वन्दन तव चरणों में।
हम भक्तिभाव से अंजलि कर, प्रभु शीश झुकाते चरणों में।।
जल चंदन अक्षत पुष्प चरू वर, दीप धूप फल लाए हैं।
निज "ज्ञानमती" कैवल्य हेतु, प्रभु अर्घ्य चढ़ाने आए हैं।।
हे वीर प्रभो! हम अर्घ्य चढ़ाकर, नमन करें तव चरणों में। त्रिशला.....

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरतीर्थंकराय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

# भगवान महावीर

## ( गणिनी ज्ञानमती विरचित )

### *प्रथम अधिकार*

### मंगलाचरण

**जैनधर्म का अनादि मूलमंत्र**

**णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।**
**णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।**

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो। यहां 'लोए' और 'सव्व' पद अन्त्यदीपक हैं अतः पांचों परमेष्ठियों के साथ इन्हें लगाना चाहिए।



### *श्री महावीर स्तवन*

स्रग्धरा छन्द

श्रीमान् वीरोऽतिवीरः त्रिभुवनमहितः सौख्यराशिर्जिनेन्द्रः।
यो जातः कुण्डलाख्ये भुवि प्रथितपुरे सोऽस्ति सिद्धार्थपुत्रः।।
आषाढे शुक्लषष्ठ्यां सुरनरविनुतो गर्भमायात् जनन्यां।
पित्रोः पूजां विदध्युः किल दिविजगणाः रत्नधारा ववर्षुः।।१।।
चैत्रे शुक्ले जिनेशः त्रयुतदशमे पावने जायतेस्म।
हृद्यैः संगीतवाद्यैः सुरगिरिशिखरे सोऽभिषिक्तः सुराद्यैः।।
मार्गे कृष्णे दशम्यां व्रतगुणमणिभिर्भूषितो जातरूपः।
ध्याने लीनः कदाचित् समदभवकृतस्तूपसर्गस्य जेता।।२।।
राधे शुक्लादशम्यां प्रसितकलितमाः उद्ययौ ज्ञानसूर्यः।
लोकालोकप्रकाशी ह्यनवधिकिरणैः ध्वस्तमोहांधकारः।।
कृष्णस्याद्ये दिने ते किल नभसि महावीर!दिव्यध्वनिः स्यात्।
त्वत्स्याद्वादामृतं भोः भवगदहरणं देव! अद्यावधीह।।३।।
ऊर्जे कृष्णे निशांते चतुरधिदशमे वासरे मुक्तिमाप्नोत्।
पावापुर्यां च वीरः सहजसुखमयः सप्तहस्तोच्छ्रितोऽसौ।।
कौमार्ये ध्वस्तमारः भुवि किल चरमस्तीर्थकृन्नाथवंशी।
स्वर्णाभो वर्धमानो हतदुरितरविः सिंहचिन्हेन ज्ञातः।।४।।
मातंगो यक्षदेवो जिनवचनरता सात्र सिद्धायिनी च।
ताभ्यां ते पादपद्मं विजितभव! सदा पूजितं विश्ववंद्यं।।
त्रैलोक्येशं जिनं त्वामहमपि सततं सन्मते! वीर! वंदे।
याचेऽहं तत्फलं भोः! जिनवरगुणभृत् संपदं देहि मह्यं।।५।।

(अनुष्टुप् छन्द)

वर्ष - द्वासप्ततेरायुः, त्रिशलानंदनो जिनः।
भक्त्यानिशं स्तवीमि त्वां, ज्ञानमत्यै श्रियै त्वरं।।६।।

*अर्थ*– **श्री अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मी से सहित वीर, अतिवीर जिनेन्द्र सम्पूर्ण सुखों की राशिस्वरूप तीनों लोकों में पूज्य हैं। पृथ्वीतल पर "कुंडलपुर" नाम से प्रसिद्ध नगरी में भव्यरूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य, महाराज सिद्धार्थ के पुत्र वे वीर जिनेन्द्र हैं।**

आषाढ़ शुक्ला षष्ठी तिथि के दिन माता त्रिशला के गर्भ में तीर्थंकर वीर के अवतरित होने पर स्वर्ग से देवताओं ने वहाँ आकर माता-पिता की पूजा करके रत्नों की धारा बरसाई थी।।१।।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के पवित्र दिवस जब भगवान ने जन्म लिया तब गीत-संगीत आदि के द्वारा खुशियाँ मनाते हुए इन्द्र एवं देवताओं ने सुमेरु पर्वत के शिखर-पाण्डुकशिला पर उनका जन्माभिषेक महोत्सव किया था पुनः मगशिर कृष्णा दशमी के दिन वे महाव्रतरूप गुणमणियों से विभूषित होकर जातरूप-नग्न दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ध्यान में लीन हो गये और किसी समय ध्यान में विघ्न डालने के निमित्त से भव नामक एक रुद्र ने उन पर घोर उपसर्ग किया किन्तु अपने अविचल ध्यान एवं कठोर तपस्या से वीर प्रभु ने उपसर्ग पर विजय प्राप्त कर लिया।

*भावार्थ*—जन्माभिषेक के बाद इन्द्र ने भगवान के वीर और वर्द्धमान दो नाम रखे थे। संजय-विजय महामुनियों ने 'सन्मति' एवं संगम देव ने 'महावीर' नाम रखा था। रुद्र ने उपसर्ग विजय के बाद 'अतिवीर' (महतिमहावीर) नाम रखा था।।२।।

उपसर्ग विजेता बनकर प्रभु ने वैशाख शुक्ला दशमी तिथि में समस्त पापान्धकार को नष्ट कर असीमित किरणों से समन्वित केवलज्ञान सूर्य को प्रगट कर लिया, जिससे सम्पूर्ण मोहरूपी अंधेरा ध्वस्त हो गया और पूरा लोक-अलोक चराचर दिखाई देने लगा। हे महावीर स्वामी! केवलज्ञान होने के छ्यासठ दिनों बाद श्रावण कृष्णा एकम के दिन आपकी दिव्यध्वनि खिरी थी, तब हे देव! भव्यों के संदेह को हरण करने वाली आपकी जो स्याद्वाद अमृतरूपी वाणी निकली, वह आज तक भी पृथ्वीतल पर प्रवाहित हो रही है अर्थात् आज तक आपका अनेकान्त शासन चल रहा है।। ३।।

सात हाथ ऊँचे शरीर वाले, स्वर्ण वर्ण की कांति के धारक, सिंह चिन्ह से ज्ञात, नाथवंशी, चरम-अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर कुमारावस्था में ही कामदेव को ध्वस्त करके कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की पिछली रात्रि में तथा अमावस के प्रभात में पावापुरी नगरी से मोक्ष धाम को प्राप्त कर सहज सुख में लीन हो गये।। ४।।



हे संसारचक्र के विजेता महावीर भगवन्! आपके जिनवचनों में अनुरक्त रहने वाले आपके शासनदेवता मातंग यक्ष एवं सिद्धायिनी यक्षी सदैव आपके चरणकमलों की पूजा करते हैं, इसलिए हे विश्ववंद्य त्रिलोकीनाथ सन्मति जिनेन्द्र! वीर प्रभो! मैं भी आपसे सतत याचना करता हूँ कि हे नाथ! जिनगुणसम्पत्ति की प्राप्ति का फल प्रदान कीजिए।। ५।।

बहत्तर वर्ष की आयु वाले हे त्रिशलामाता के पुत्र महावीर जिनेन्द्र! मैं ज्ञानमती लक्ष्मी की शीघ्र प्राप्ति हेतु आपका भक्तिपूर्वक सदा स्तवन करता हूँ।

अर्थात् मुझ गणिनी ज्ञानमती ने पूर्ण ज्ञान सहित संपत्ति को प्राप्त करने के लिये भगवान महावीर का यह स्तवन किया है।। ६।।

## *भगवान महावीर*

### जन्मभूमि कुण्डलपुर

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड है। इस आर्यखण्ड में "विदेह" नाम से एक प्रसिद्ध देश माना गया है। कभी यह देश खेट, खर्वट, मटंब, पुटभेदन, द्रोणामुख, आकर—सुवर्ण, चाँदी आदि की खान, खेत, ग्राम और घोषों से विभूषित था। जैसा कि वर्णन है—

सखेटखर्वटाटोपिमटंबपुटभेदनैः। द्रोणामुखाकरक्षेत्रग्रामघोषैर्विभूषितः[1]।।३।।

जो देश नगर, नदी और पर्वत से घिरा हो वह "खेट" है। जो केवल पर्वतों से घिरा हो वह "खर्वट" है। जो पाँच सौ गाँवों से घिरा हो वह "मटम्ब" है। जो समुद्र के किनारे हो तथा जहाँ पर लोग नाव से उतरते हों वह "पत्तन" या "पुटभेदन" कहलाता है। जो नदी के किनारे बसा हो उसे "द्रोणामुख" कहते हैं। जहाँ सोना, चाँदी आदि निकलते हैं उसे "खान" कहते हैं। अन्न उत्पन्न होने की भूमि क्षेत्र—"खेत" है। जिसमें बाढ़ से घिरे हुए घर हों, जिसमें अधिकतर किसान लोग निवास करते हों, जो बाग-बगीचा और मकानों से सहित हों उन्हें "ग्राम" कहते हैं और जहाँ अहीर लोग रहते हों उसे "घोष" कहते हैं। ये सब शास्त्रीय प्राचीन परिभाषाएँ हैं। इन सभी से सहित वह "विदेह" देश था।

---

१. हरिवंशपुराण-सर्ग २।

इस देश की राजधानी कुण्डपुर या कुण्डलपुर प्रसिद्ध थी। यह परकोटा एवं खाई आदि से विभूषित बहुत ही वैभवपूर्ण नगरी थी। इसका वर्णन बहुत ही सुन्दर किया गया है। यहाँ आचार्य कहते हैं कि—

एतावतैव पर्याप्तं, पुरस्य गुणवर्णनम्।
स्वर्गावतरणे तद्यद्वीरस्याधारतां गतम्[1]।।१२।।

इस नगर के गुणों का वर्णन तो इतने से ही पर्याप्त हो जाता है कि वह नगर स्वर्ग से अवतार लेते समय भगवान महावीर का आधार हुआ था अर्थात् साक्षात् महावीर स्वामी जहाँ अवतीर्ण हुए थे।

राजा सिद्धार्थ के माता-पिता का नाम हरिवंशपुराण में वर्णित है—

सर्वार्थश्रीमतीजन्मा, तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः।
सिद्धार्थोऽभवदर्काभो, भूपः सिद्धार्थपौरुषः[2]।।३।।

यहाँ के राजा "सर्वार्थ" महाराज थे और उनकी महारानी का नाम "श्रीमती" था। इनके पुत्र का नाम "सिद्धार्थ" था। इनकी रानी महाराजा चेटक की पुत्री "प्रियकारिणी" थीं जिनका दूसरा नाम "त्रिशला" था। जो राजा सिद्धार्थ वर्तमान में भगवान वर्द्धमान के पिता के पद को प्राप्त हुए थे भला उनके उत्कृष्ट गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? तथा अपने पुण्य से तीर्थंकर महावीर को जन्म देने वाली उन त्रिशला के गुणों का वर्णन भी कोई मनुष्य नहीं कर सकता है।

महावीर प्रभु का जन्म कुण्डलपुर में हुआ ऐसा वर्णन तिलोयपण्णत्ति एवं षट्खण्डागम में भी आया है। यथा—

सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं, णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे, चित्तसिया तेरसीए उप्पण्णे।।५४९।।

अब भगवान महावीर के नाना के कुल का संक्षिप्त वर्णन आपके लिए प्रस्तुत है—

सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशाली नगरेऽभवत्।
चेटकाख्योऽतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः[3]।।३।।

सिंधुदेश के वैशालीनगर में चेटक नाम के प्रसिद्ध राजा थे, इनकी रानी का नाम भद्रा-सुभद्रा था। इनके दश पुत्र थे जिनके नाम धनदत्त,

१-२. हरिवंशपुराण-सर्ग २। ३. उत्तरपुराण-पर्व ७५।



धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त, कम्बोज, कम्पन, प्रयंग, प्रभंजन और प्रभास थे ये दशों पुत्र दशधर्मों के समान निर्मल गुणों से विभूषित थे। इन्हीं राजा चेटक की महारानी ने सात ऋद्धियों के समान ही सात पुत्रियों को जन्म दिया था जो क्रमशः प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना इन नाम को धारण करने वाली थीं।

विदेहदेश की कुण्डपुरी कुण्डलपुरी नगरी में "नाथवंश" के राजा सिद्धार्थ के साथ राजा चेटक ने अपनी बड़ी पुत्री प्रियकारिणी "त्रिशला" का विवाह किया था। वत्सदेश में कौशाम्बी नगरी के चंद्रवंशी राजा शतानीक के साथ दूसरी पुत्री मृगावती का विवाह हुआ था। दशार्ण देश के हेरकच्छनगर में सूर्यवंशी राजा दशरथ राज्य करते थे, राजा चेटक की तृतीय पुत्री सुप्रभा इन दशरथ की पट्टरानी हुई थीं। कच्छदेश के "रोरुकनगर" में राजा उदयन राज्य करते थे, चतुर्थ पुत्री प्रभावती उनकी महारानी हुई थीं। पांचवी पुत्री चेलिनी राजगृही के राजा श्रेणिक की पट्टरानी हुई थीं[1] तथा ज्येष्ठा और चन्दना कुमारिका ने आर्यिका दीक्षा से अपना जीवन विभूषित किया था।

यही प्रकरण "वीरजिणिंदचरिउ" ग्रंथ में भी आया है—

जम्बूद्वीप के विदेहप्रदेश में कुण्डपुर—कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ की महारानी प्रियकारिणी से भगवान महावीर जन्में हैं[2]।

इसी ग्रन्थ में राजा चेटक की राजधानी वैशाली का वर्णन आया है इसे सिंधुदेश में माना है। इन राजा के दश पुत्र और प्रियकारिणी आदि सात पुत्रियाँ थीं। जिनमें से बड़ी पुत्री प्रियकारिणी को कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ की महारानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था[3]।

## *गर्भकल्याणक*

*गर्भावतरण*—भगवान महावीर होने वाले महापुरुष सोलहवें स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में थे। जब उनकी आयु मात्र छह महिने की शेष रही तब सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने विदेहदेश की राजधानी कुण्डलपुरी में राजा सिद्धार्थ के आँगन में रत्नों की वृष्टि करना शुरू कर दी। ये रत्न प्रतिदिन

१. उत्तरपुराण-पर्व ७५। २. वीरजिणिंदचरिउ-पृ. ११। ३. वीरजिणिंदचरिउ, पृ. ६०।

साढ़े सात करोड़ बरसते थे।

जैसा कि उत्तरपुराण में लिखा है—

तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये, विषये भवनांगणे।।२५१।।
राज्ञः कुंडपुरेशस्य, वसुधारापतत्पृथु।
सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः, सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।२५२।।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना है कि राजा सिद्धार्थ वैशाली के राजा नहीं थे और न ही वे वैशाली के अन्तर्गत छोटे से कुण्डग्राम के छोटे-मोटे राजा थे किन्तु वे तत्कालीन वैशाली के राजा चेटक जो कि उनके श्वसुर थे, ये सिद्धार्थ इनसे भी श्रेष्ठ तथा इन्द्रों से भी पूज्य महान राजा थे।

इन राजा के महल का नाम ''नंद्यावर्त'' था। यह सात खन का बहुत ही सुन्दर था। एक दिन महारानी त्रिशला अपने ''नंद्यावर्त'' महल में रत्ननिर्मित सुंदर पलंग पर सोई हुई थीं, रात्रि में रत्नों के दीपों का प्रकाश फैला हुआ था। आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन पिछली रात्रि में रानी ने सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव से उनका फल पूछने पर ''आप तीर्थंकर पुत्र को जन्म देंगी'' ऐसा सुनकर प्रसन्नता को प्राप्त हुईं। तभी इन्द्रादिदेवगण ने आकर ''गर्भकल्याणक'' उत्सव मनाया।

आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित ''श्री महावीर पुराण'' में भी कहा है—

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'विदेह' नाम का एक विस्तृत देश है। धार्मिक पुरुषों का निवास स्थान होने के कारण वह विदेहक्षेत्र तीर्थ तुल्य ही शोभायमान है। इस स्थान से कितने ही मुनियों ने मोक्ष को प्राप्त किया है अतः नाम के अनुसार इसका गुण भी सार्थक है। यहाँ के निवासी कोई-कोई सोलहकारण आदि भावनाओं को भाकर तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया करते हैं। यहाँ के वन पर्वत भी ध्यानस्थ योगियों से विशेषरूप से शोभायमान हैं एवं भव्य उत्तुंग जिनमंदिरों को देखकर किसी महान धार्मिक स्थान का बोध होता है। विदेह प्रदेश के ग्राम-मुहल्ले सभी जिनालयों से सुशोभित हैं। यहाँ पर मुनिसमूह चारों प्रकार के संघ के साथ धर्म प्रवृत्ति के लिये सदा विहार किया करता है।



इसी विदेह देश—जनपद के ठीक मध्य में 'कुण्डलपुर' एक अत्यंत रमणीय नगर है। यहाँ के कोट द्वार एवं अलंघ्य खाइयों को देखकर अपराजिता—अयोध्या नगरी का भान होता है। देवगणों के आवागमन से इस नगर में सदा कोलाहल सा मचा रहता था। यहाँ के ऊँचे-ऊँचे जैन मंदिरों को देखकर लोगों को कुण्डलपुर के प्रति अपार श्रद्धा होती थी। वह नगर धर्म का समुद्र जैसा प्रतीत होता था। वहाँ के जिनालय 'जय-जय' शब्द, स्तुति, नृत्य, गीत आदि से सर्वदा मुखरित रहते थे। स्वर्ग के दिव्य उपकरणों सहित रत्नमयी प्रतिमाओं का दर्शन कर वहाँ के लोग कृतार्थ हो जाया करते थे। उस नगर के ऊँचे परकोटे को देखकर यह भान होता था कि वे उच्च स्थान देने के लिये स्वर्ग के देवों को बुला रहे हैं। उस नगर के निवासी दाता, धर्मात्मा, शूरवीर, व्रत-शीलादि से युक्त संयमी होते थे। वे पुरुष जिनेन्द्रदेव की भक्ति, निर्ग्रन्थ गुरु भक्ति, सेवा एवं पूजा में सदा तत्पर रहा करते थे।

उस नगरी—राजधानी के राजा का नाम 'सिद्धार्थ' था। वे नाथवंशरूपी गगन को सुशोभित करने वाले साक्षात् सूर्य थे। वे महाराज मति, श्रुत, अवधि- तीनों ज्ञान को धारण करने वाले थे। उन्होंने सदा नीतिमार्ग को प्रश्रय दिया था। वे जिनदेव के भक्त, महादानी एवं दिव्य ज्ञान के धारक थे। उनके चरणों की सेवा बड़े-बड़े विद्याधर, भूमिगोचरी एवं देव किया करते थे। वे समस्त राजाओं में इन्द्र के समान शोभायमान थे।

उनकी त्रिशला नाम की अत्यन्त रूपवती महारानी थी। वे पति-परायणा सरस्वती के समान एवं सर्वगुण संपन्न थीं।

एक दिन सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने कुबेर से कहा—

हे धनपते! तुम भरतक्षेत्र के कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला के आंगन में दिव्य रत्नों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दो। उस समय यह रत्न-सुवर्णमयी वर्षा आकाश से गिरती हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानों प्रकाशरूपी माला श्रीजिनेन्द्र के माता-पिता की सेवा करने को आ रही हो। गर्भाधान के छह माह पूर्व से ही कल्पवृक्ष के पुष्प, सुगंधित जल, सुवर्ण एवं रत्नों के ढेर से राजमहल जगमगा उठा।

## सोलह स्वप्न

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में कोमल शय्या पर सोती हुई महारानी त्रिशला ने सोलह स्वप्न देखे जो सर्वथा कल्याणकारी एवं सौभाग्य सूचक थे।

सोलह स्वप्नों में उन्होंने सर्वप्रथम मदोन्मत्त गजराज को देखा। बाद में चन्द्रमा के सदृश शुभ कांतियुक्त, ऊँचे कन्धेवाला बैल गम्भीर शब्द करता हुआ दिखलाई दिया। तीसरा स्वप्न अपूर्व कान्तिवान वृहद्काय लाल कन्धेवाला सिंह था। चौथे स्वप्न में कमलरूपी सिंहासन पर विराजमान लक्ष्मी देवी को उन्होंने देव-हस्तियों द्वारा अभिषेक करते हुए देखा। पाँचवें में दो सुगन्धित मालायें थीं। छट्ठे में ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा को देखा, जिससे सारा संसार आलोकित हो रहा था। सातवें स्वप्न में देवी ने अन्धकार का विनाश करने वाले सूर्य को उदयाचल पर्वत से निकलते हुए देखा। आठवें स्वप्न में कमल के पत्तों से आच्छादित मुखवाले सुवर्ण के दो कलश देखे। नवमें स्वप्न में तालाब में क्रीड़ा करती हुई मछलियाँ देखीं। वह तालाब खिली हुई कुमुदिनी एवं कमलिनी से शोभायमान हो रहा था। दशवें स्वप्न में उन्होंने एक भरपूर तालाब देखा, जिसमें कमल पुष्पों की पीत रज तैर रही थी। ग्यारहवें स्वप्न में गम्भीर गर्जन करता हुआ चंचल तरंगों से युक्त समुद्र दिखलाई दिया। बारहवें स्वप्न में उन्होंने दैदीप्यमान मणि से युक्त ऊँचा सिंहासन देखा। तेरहवाँ स्वप्न बहुमूल्य रत्नों से प्रकाशित स्वर्ग का विमान था। चौदहवें स्वप्न में पृथ्वी को भेद कर ऊपर की ओर जाता हुआ फणीन्द्र (भवनवासी देव) का ऊँचा भवन दिखलाई दिया। पन्द्रहवें स्वप्न में उन्होंने रत्नों की विशाल राशि देखी, जिसकी किरणों से आकाश तक दैदीप्यमान हो रहा था। सोलहवें स्वप्न में माता ने निर्धूम अग्नि देखी।

उपरोक्त सोलह स्वप्नों को देखने के पश्चात् महारानी त्रिशला ने पुत्र के आगमनसूचक ऊँचे शरीरवाले उत्तम गजराज को मुख-कमल में प्रवेश करते हुए देखा। माता के स्वप्न देखने के थोड़ी देर बाद ही प्रातःकाल हुआ। महारानी त्रिशला को जगाने के लिए राजमहल में सुमधुर वाद्य बजने लगे। बन्दी जनों ने कहना आरम्भ किया- 'हे महादेवी! अब जागने का समय हो गया है। अतएव आप को अपनी शैय्या त्याग कर अपने योग्य शुभ कार्यों



को आरम्भ कर देना चाहिये, जिससे कल्याणकारी वस्तुएँ आप को बड़ी सरलता से प्राप्त हों।

कुछ समय तक इसी प्रकार वाद्यों के शब्द एवं बन्दीजनों द्वारा मंगल गान होते रहे। महारानी त्रिशला एकाएक जाग उठीं। उन्हें प्रातःकाल के देखे हुए स्वप्नों से अतीव प्रसन्नता हुई। शैय्या त्याग कर उन्होंने मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से स्तवन, सामायिक आदि उत्तम नित्य- कर्म करना आरम्भ किया। इस प्रकार की नित्य क्रिया सर्वथा कल्याणकारिणी है एवं सब प्रकार से मंगल करने वाली है।

तत्पश्चात् महारानी ने स्नान समाप्त कर अपना श्रृंगार किया। वे आभूषणों से सुसज्जित हो सेवकों को साथ लेकर राज्य सभा में गयीं। महाराज अपनी प्राणप्रिया को अपनी ओर आती हुई देख कर बड़े प्रसन्न हुए। बैठने के लिए उन्होंने रानी को अपना आधा आसन समर्पित कर दिया। महारानी प्रसन्नचित्त होकर उक्त आसन पर बैठ गयीं। उन्होंने बड़े मधुर शब्दों में महाराज से निवेदन किया— 'हे देव! आज रात्रि के तीसरे प्रहर में मैंने अत्यन्त आश्चर्यजनक स्वप्न देखे हैं। मेरी अभिलाषा है कि गजराज इत्यादि इन सोलह स्वप्नों का फल आप मुझे अलग-अलग सुनायें।'

महारानी के मुख से स्वप्न की बातें सुनकर मति-श्रुति-अवधि तीनों ज्ञान के धारक महाराज सिद्धार्थ ने कहा— 'हे सुन्दरी! मैं इन स्वप्नों के शुभ फलों का शीघ्र ही वर्णन कर रहा हूँ। तुम सावधान होकर श्रवण करो।' महाराज ने कहना आरम्भ किया—हे कान्ते!

१. गजराज देखने का फल यह हुआ कि तेरा पुत्र तीर्थंकर होगा।

२. बैल देखने से फल यह हुआ कि वह धर्मचक्र का संचालक होगा।

३. सिंह के दर्शन से वह पुत्र कर्मरूपी गजराजों को विनष्ट करनेवाला अत्यन्त बलवान होगा।

४. लक्ष्मी का अभिषेक देखने का फल यह है कि सुमेरु पर्वत पर इन्द्रादि देवों के द्वारा इस बालक का स्नान कराया जायेगा।

५. स्वप्न में मालाओं के देखने से सुगन्धित शरीरवाला एवं श्रेष्ठ ज्ञानी होगा।

६. पूर्ण चन्द्रमा के दर्शन से वह पुत्र अपने धर्मरूपी अमृत-वर्षण से

भव्य जीवों को प्रसन्न करनेवाला होगा।

७. सूर्य के देखने से वह अज्ञानरूपी अन्धकार का विनाशक तथा उन्हीं के समान कान्तिवाला होगा।

८. जल से परिपूर्ण घड़ों के देखने का फल यह है कि वह अनेक निधियों का स्वामी तथा ज्ञान- ध्यानरूपी अमृत का घट होगा।

९. मछली की जोड़ी देखने से सब के लिए कल्याणकारी तथा स्वयं महान सुखी होगा।

१०. सरोवर देखने से शुभ लक्षण तथा व्यंजनों से सुशोभित शरीरधारी होगा।

११. समुद्र के देखने से नौ केवल-लब्धियों वाला केवलज्ञानी होगा।

१२. सिंहासन के देखने से महाराज पद से वाच्य जगत् का स्वामी होगा।

१३. स्वर्ग का विमान देखने का फल यह हुआ कि वह पुत्र स्वर्ग से आकर अवतार धारण करेगा।

१४. नागेन्द्र भवन के अवलोकन से अवधिज्ञानरूपी नेत्र को धारण करने वाला होगा।

१५. रत्नों का ढेर देखने से वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि रत्नों की खानि होगा।

१६. निर्धूम अग्नि के दर्शन से वह कर्मरूपी ईंधन को भस्म करने वाला होगा।

अन्त में गजेन्द्र के दर्शन का फल यह हुआ कि वह अन्तिम तीर्थंकर स्वर्ग से आकर तुम्हारे निर्मल पवित्र गर्भ में प्रवेश कर चुका है।

महाराज के मुख-कमल से सोलहों स्वप्नों का फल सुनकर पतिव्रता महारानी का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। उन्हें ऐसा लगा कि जैसे उन्हें पुत्र की प्राप्ति ही हो गई हो। वे बड़ी प्रसन्न हुईं।

## *देवियों द्वारा माता की सेवा*

उसी समय सौधर्म इन्द्र का आदेश पाकर पद्म आदि सरोवरों में निवास करने वाली श्री, ह्री आदि छः देवियाँ राजमहल में आ गयीं। उन्होंने तीर्थंकर के गर्भाधान के लिए स्वर्ग से लाई हुई पवित्र वस्तुओं से माता के गर्भ का शोधन किया, जिससे उन्हें पुण्य की प्राप्ति हो पुनः वे अपने-अपने



शुभ गुणों को माता में स्थापित कर उनकी सेवा में संलग्न हो गयीं।

श्री देवी ने शोभा, ह्री देवी ने लज्जा, धृति देवी ने धैर्य, कीर्ति देवी ने स्तुति, बुद्धि देवी ने श्रेष्ठ बुद्धि तथा लक्ष्मी देवी ने भाग्य ऐसे इन गुणों की वृद्धि की। वे जिनमाता बड़ी गुणवती हुईं। यों तो महारानी पूर्व में ही स्वभाव से पवित्र थीं, पर जब देवियों ने शुद्ध वस्तुओं से उन्हें शुद्ध किया, तब तो वे मानों स्फटिक मणि से ही बनाई गई हों ऐसी शोभायमान प्रतीत होने लगीं। आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की शुद्ध तिथि षष्ठी को आषाढ़ नक्षत्र में एवं शुभ लग्न में वह देव (अच्युतेन्द्र) स्वर्ग से चय कर माता के शुद्ध गर्भ में आया। महावीर प्रभु के गर्भ में आते ही स्वर्ग के कल्पवासी देवों के विमानों में घण्टे की ध्वनि होने लगी एवं इन्द्र का आसन काँप उठा।

ज्योतिषी देवों के यहाँ स्वयं सिंहनाद होने लगा। भवनवासी देवों के यहाँ शंख की प्रचण्ड ध्वनि हुई। साथ ही व्यन्तर देवों के महलों में भेरी की विशेष ध्वनि हुई। केवल यही नहीं अन्य भी अनेक आश्चर्यजनक घटनायें घटीं। उक्त आश्चर्यजनक घटनाओं को घटते देखकर चारों निकायों के देवों को यह ज्ञात हो गया कि महावीर प्रभु का गर्भावतरण हो गया है। तत्पश्चात् वे देवगण भगवान् का गर्भ-कल्याणक उत्सव मनाने के उद्देश्य से नगर में पधारे। उस समय देवों के समूह को देखते ही बनता था। वे सर्वोत्तम सम्पदाओं से सुशोभित थे, अपनी-अपनी सवारियों पर आरूढ़ थे, उत्तम धर्म का पालन करने वाले उद्यमी थे। वे अपने अंग के आभूषणों एवं तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले थे। उन्होंने अपने ध्वजा-छत्र-विमानादिकों से आकाश को मानो ढँक दिया था। वे देव अपनी देवियों के साथ 'जय-जय' शब्द कर रहे थे।

उस समय नगर का वातावरण देखने योग्य ही था। विमानों, अप्सराओं एवं देवों की सेनाओं से घिरा हुआ वह नगर स्वर्ग जैसा सर्वोत्तम प्रतीत होने लगा। देवों के साथ इन्द्र ने भगवान के माता-पिता को सिंहासन पर बिठाकर सोने के कलशों से स्नान कराया तथा उन्हें दिव्य आभूषण—वस्त्र पहिनाये। माता के गर्भस्थ शिशु (भगवान) की सभी ने तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें प्रणाम किया अर्थात् माता की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें प्रणाम किया।

इस प्रकार सौधर्म इन्द्र भगवान का गर्भकल्याणक सम्पन्न कर

जिनमाता की सेवा में उपयुक्त देवियों को नियुक्त कर देवों के साथ पुण्य उपार्जन कर बड़ी प्रसन्नता के साथ पुनः स्वर्ग को वापस चले गये।

स्वर्ग से आई हुई देवियों में से कोई तो जिन-माता के समक्ष मंगल द्रव्य रखती थीं, कई देवियों ने महादेवी की शय्या को सुसज्जित करने का भार अपने ऊपर लिया, किसी ने दिव्य आभूषण पहिनाने का भार लिया तथा किसी ने माला तथा रत्नों के गहने देने का। कई देवियाँ माता की अंग-रक्षा के लिए खुले खड्गों से सज्जित होकर पहरा देती थीं एवं कई उनके लिए भोग्य सामग्रियों को एकत्रित करने में संलग्न थीं। कई एक देवियाँ पुष्प-रज से आच्छादित राज्य—प्रांगण की सफाई में लगी थीं एवं चन्दन-जल का छिड़काव करती जाती थीं।

उक्त देवियों ने रत्नों के चूर्ण से स्वस्तिक आदि की रचना की एवं महल को कल्पवृक्ष के पुष्पों से सजाया। किसी ने महलों के ऊँचे शिखरों पर रत्नों के दीप जलाये, जो अन्धकार को विनष्ट करनेवाले थे। वस्त्र पहिनाना, आसन बिछाना आदि समस्त कार्य देवियाँ ही करती थीं। महादेवी की वन-क्रीड़ा के समय मधुर गीत, सुन्दर नृत्य एवं धार्मिक कथायें सुनाकर वे माता को सुख पहुँचाया करती थीं। इस प्रकार जिनदेव की माता महादेवी त्रिशला की सेवा देवियों द्वारा होती रही एवं उनकी शोभा अनुपम थी।

जब नवम मास निकट आया, तो गर्भवती महादेवी की बुद्धि अति प्रखर होती गई। उन्हें प्रसन्न रखने के उद्देश्य से देवियाँ मनोहर प्रहसन किया करतीं एवं तरह-तरह की कवितायें सुनाया करती थीं। देवियाँ कुछ गूढ़ अर्थपूर्ण पहेलियाँ महादेवी से पूछा करती थीं एवं महादेवी उनका समुचित उत्तर दे दिया करती थीं। उदाहरण के रूप में निम्न पहेली एवं उसका उत्तर मनन करने योग्य है—

विरक्ता नित्यकामिन्या, कामुकोऽकामुको महान्।
सस्पृहो निःस्पृहो लोके, परात्मान्यश्च यः स कः।।१।।

अर्थात् जो वैरागी होने पर भी सर्वदा कामिनी की इच्छा रखता है एवं निस्पृही होने पर भी इच्छा किया करता है, वह विलक्षण पुरुष इस संसार में कौन है? यह तो हुई पहेली। महादेवी ने पहेली का श्लोक में ही उत्तर दिया। महादेवी का उत्तर था— 'परमात्मा'। कारण, 'परमात्मा' का एक अर्थ



तो विलक्षण पुरुष होता है एवं दूसरा अर्थ परमात्मा भी होता है। परमात्मा नित्य—कामिनी अर्थात् अविनाशी मोक्षरूपी स्त्री में अनुरागी है एवं उसी की इच्छा रखनेवाला होता है। दूसरी एक पहेली भी सुनिये—

दृश्योऽदृश्योऽस्ति चिद्भूषः, प्रकृत्या निर्मलोऽव्ययः।
हन्ता देहविधेर्देवो, नाऽयं को वर्ततेऽद्य सः ।।२।।

अर्थात् जो अदृश्य है, फिर भी देखने योग्य है; स्वभाव से निर्मल होने पर भी देह की रचना का नाशक है, पर महादेव नहीं है, ऐसा वह कौन है? इस श्लोक का महादेवी ने 'देवोना' शब्द से उत्तर दिया। 'देवोना' का अर्थ है— देवरूपी मनुष्य श्री अर्हन्त देव।

इस प्रकार उन देवियों ने प्रश्नोत्तर के रूप में महादेवी से अनेक पहेलियाँ पूछीं। वे भिन्न प्रकार की हैं— 'हे सुन्दरी! असंख्यात मनुष्य एवं देवों द्वारा पूज्य तीनों जगत् का गुरु तेरा पुत्र अनेक उत्तम गुणों से युक्त तथा विजयी हो। जिसने दूसरी स्त्रियों से प्रेम करना त्याग दिया है, पर फिर भी अविनाशी मोक्ष-सुख में अनुरागी है, ऐसा गुणों का समुद्र तेरा पुत्र हमारी रक्षा करे। हे जगत् का कल्याण करनेवाली, तीन लोकों के स्वामी को गर्भ में धारण करनेवाली! हरिहरादि के मन की रक्षा कर।

जगत् के कल्याण के लिए अपने गर्भ में तीर्थंकर को धारण करनेवाली, हे महादेवी! धर्म-तीर्थ स्थापित करनेवाले की उत्पत्ति में देव-विद्याधर-भूमिगोचरी जीवों का तीर्थ-स्थान बन। (इसमें 'अठ' क्रिया गुप्त है)

देवी का प्रश्न — हे देवी महारानी! इहलोक एवं परलोक में कल्याण करने वाला कौन है?

माता का उत्तर —जो धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक हैं, वे ही श्री अर्हन्त देव तीनों जगत् का कल्याण करने वाले हैं।

देवी का प्रश्न — गुरुओं में सबसे महान कौन है?

माता का उत्तर —जो तीन जगत् का गुरु एवं सब अतिशयों से तथा दिव्य अनन्त गुणों से सुशोभित है, ऐसे श्री जिनेन्द्र देव ही महान् गुरु हैं।

देवी का प्रश्न — इस जगत् में किसके वचन श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक हैं?

माता का उत्तर —जो सबको जानने वाले, दुनिया का हित करने वाले,

अठारह दोषरहित एवं वीतरागी हैं, ऐसे श्री अर्हन्त भगवान के वचन ही श्रेष्ठ एवं मानने योग्य हैं। इसके सिवा दूसरे मिथ्यामतियों के नहीं।

देवी का प्रश्न — जन्म-मरणरूपी विष को दूर करनेवाला अमृत के समान क्या पीना चाहिये?

माता का उत्तर —श्री जिनेन्द्र के मुख-कमल से निकला हुआ 'ज्ञानामृत' पीना चाहिये। दूसरे मिथ्या-ज्ञानियों के विषरूपी वचन नहीं मानने चाहिये।

देवी का प्रश्न — इहलोक में बुद्धिमानों को किसका ध्यान करना चाहिये?

माता का उत्तर —पंच-परमेष्ठी का, जैन शास्त्र का एवं आत्म-तत्त्व का ध्यान करना चाहिये, दूसरा आर्त-रौद्र रूप खोटा ध्यान कभी नहीं करना चाहिये।

देवी का प्रश्न — शीघ्र कौन-सा काम करना चाहिए?

माता का उत्तर —जिससे संसार के भोगों का नाश हो, ऐसे अनन्त ज्ञान-चारित्र का पालन करना चाहिए, मिथ्यात्वादिकों का नहीं।

देवी का प्रश्न — इस संसार में सज्जनों के साथ में जानेवाला कौन है?

माता का उत्तर —दयामय धर्म ही सहायता करनेवाला बन्धु है, जो सब दुःखों से रक्षा करनेवाला है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई सहगामी नहीं है।

देवी का प्रश्न — धर्म के क्या-क्या लक्षण हैं एवं कार्य क्या हैं?

माता का उत्तर —बारह तप, रत्नत्रय, महाव्रत, अणुव्रत, शील एवं उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्म– ये सब धर्म के कार्य एवं लक्षण हैं।

देवी का प्रश्न — इहलोक में धर्म का फल क्या है?

माता का उत्तर —तीन लोक के स्वामियों की इन्द्र-धरणेन्द्र-चक्रवर्ती पद-रूप सम्पदायें, श्री जिनेन्द्र का अनन्त सुख, ये सब धर्म के ही उत्तम फल हैं।

देवी का प्रश्न — धर्मात्माओं के चिन्ह क्या हैं?



माता का उत्तर —शान्त स्वभाव, अभिमान का न होना एवं रात-दिन शुद्ध आचरणों का पालन-ये ही धर्मात्माओं की पहिचान है।

देवी का प्रश्न — पाप के चिन्ह क्या-क्या हैं?

माता का उत्तर —मिथ्यात्वादि, क्रोधादि कषाय, खोटी संगति एवं छः तरह के अनायतन–ये पाप के चिन्ह हैं।

देवी का प्रश्न — पाप का फल क्या है?

माता का उत्तर —जो अपने को अप्रिय है, दुःख का कारण एवं दुर्गति करानेवाला, अन्य रोग-क्लेशादि देने वाला है– ऐसे सभी निन्दनीय कार्य पाप के फल हैं।

देवी का प्रश्न — पापी जीवों की पहिचान क्या है?

माता का उत्तर —क्रोध आदि कषायों का बहुत होना, दूसरों की निन्दा, अपनी प्रशंसा एवं रौद्रादि खोटे ध्यान का होना– ये सब पापियों के चिन्ह हैं।

देवी का प्रश्न — असली लोभी कौन है?

माता का उत्तर —बुद्धिमान, मोक्ष का चाहनेवाला भव्य जीव निर्मल आचरण से तथा कठिन तप से केवल धर्म का सेवन करनेवाला ही असली लोभी है।

देवी का प्रश्न — इहलोक में विचारशील कौन है?

माता का उत्तर —जो मन में निर्दोष देव-शास्त्र-गुरु का एवं उत्तम धर्म का विचार करता है, दूसरे का नहीं।

देवी का प्रश्न — धर्मात्मा कौन है?

माता का उत्तर —जो श्रेष्ठ उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण युक्त धर्म का पालन करता है। श्री जिनेन्द्र देव की आज्ञा का पालन करनेवाला ही बुद्धिमान, ज्ञानी एवं व्रती है– वही धर्मात्मा है, दूसरा कोई नहीं।

देवी का प्रश्न — परलोक जाते समय मार्ग का भोजन क्या है?

माता का उत्तर —दान, पूजा, उपवास, व्रत, शील एवं संयमादि से उपार्जन किया गया जो निर्मल पुण्य है, वही परलोक के मार्ग का उत्तम भोजन है।

देवी का प्रश्न — इहलोक में किसका जन्म सफल है?

माता का उत्तर —जिसने मोक्ष-लक्ष्मी के सुख के प्रदाता उत्तम भेद-विज्ञान को पा लिया, उसी का जन्म सफल है, दूसरे का नहीं।

देवी का प्रश्न — संसार में सुखी कौन है?

माता का उत्तर —जो सब परिग्रह की उपाधियों से रहित एवं ध्यानरूपी अमृत का पान करनेवाला वन में रहता है अर्थात् योगी है, वही सुखी है, अन्य कोई नहीं।

देवी का प्रश्न — इस संसार में चिन्ता किस वस्तु की करनी चाहिए?

माता का उत्तर —कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने की एवं मोक्ष-लक्ष्मी पाने की चिन्ता करनी चाहिये, दूसरे इन्द्रियादिक विषय-सुखों की नहीं।

देवी का प्रश्न — महान उद्योग किस कार्य में करना चाहिये?

माता का उत्तर —मोक्ष देनेवाले रत्नत्रय, तप, शुभ योग, सुज्ञानादिकों के पालने में महान यत्न करना चाहिये, धन एकत्रित करने में नहीं। कारण, धन तो धर्म से प्राप्त होगा ही।

देवी का प्रश्न — मनुष्यों का परम मित्र कौन है?

माता का उत्तर —जो तप-दान-व्रतादिरूप धर्म को आग्रहपूर्वक समझा कर पालन करावे एवं पाप कर्मों को छुड़ावे।

देवी का प्रश्न — इस संसार में जीवों का शत्रु कौन है?

माता का उत्तर — जो हित करनेवाले तप-दीक्षा-व्रतादिकों का नहीं पालन करने दे, वह दुर्बुद्धि अपना एवं दूसरे का– दोनों का शत्रु है।

देवी का प्रश्न — प्रशंसा करने योग्य क्या है?

माता का उत्तर —थोड़ा धन होने पर भी सुपात्र को दान देना, निर्बल शरीर होने पर भी निष्पाप तप करना, यही प्रशंसनीय है।

देवी का प्रश्न — हे महादेवी! आप के समान महारानी कौन है?

माता का उत्तर —जो धर्म के प्रवर्तक, जगत् के गुरु, ऐसे तीर्थंकर देवाधिदेव को उत्पन्न करे, वही मेरे समान है, दूसरी कोई नहीं।

देवी का प्रश्न — पण्डिताई क्या है?

माता का उत्तर —शास्त्रों को जानकर खोटा आचरण, खोटा अभिमान



जरा भी नहीं करना एवं अन्य पाप की क्रियायें भी नहीं करना, यही पण्डिताई है।

देवी का प्रश्न — मूर्खता किसे कहते हैं?

माता का उत्तर —ज्ञान के हित का कारण, निर्दोष तप, धर्म की क्रिया को जानकर आचरण नहीं करना।

देवी का प्रश्न — बड़े भारी चोर कौन हैं?

माता का उत्तर —जो मनुष्यों के धर्मरत्न को चुरानेवाले, पाप के कर्ता एवं अनर्थ करनेवाले हैं। ऐसे पाँच इन्द्रियरूपी चोर हैं।

देवी का प्रश्न — इस संसार में शूरवीर कौन हैं?

माता का उत्तर —जो धैर्यरूपी खड्ग से परिषहरूपी महायोद्धाओं को, कषायरूपी शत्रुओं को तथा काम-मोह आदि शत्रुओं को जीतनेवाले हों।

देवी का प्रश्न — देव कौन हैं?

माता का उत्तर —जो सबको जाननेवाल, क्षुधादि अठारह दोषों से रहित, अनन्त गुणों के समुद्र, धर्म के प्रवर्तक हों, ऐसे अर्हन्त प्रभु ही देव हैं।

देवी का प्रश्न — महान गुरु कौन हैं?

माता का उत्तर —जो इस संसार में बाह्य-आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित हों। जगत् के भव्य जीवों के हित-साधन में उद्यत हों एवं स्वयं भी मोक्ष के लिए इच्छुक हों, वही महान गुरु हैं। दूसरा मिथ्यामती धर्मगुरु नहीं हो सकता।

इस प्रकार देवियों द्वारा किये गए प्रश्नों का उत्तर माता ने गर्भस्थ तीर्थंकर शिशु के प्रभाव से दिया। प्रथम तो महारानी की बुद्धि स्वभाव से ही निर्मल थी पुनः अपने उदर में तीन ज्ञान के धारक प्रकाशमान तीर्थंकर देव को धारण करने से वे अत्यधिक पवित्र हो गई थीं। महारानी के गर्भ में स्थित तीर्थंकर बालक को कोई कष्ट नहीं हुआ, क्योंकि सीप में रहनेवाली जल-बिन्दु में कभी विकार उत्पन्न नहीं हो सकता है। उस महादेवी के उदर की त्रिवली भी भंग नहीं हुई। उदर पूर्व जैसा ही रहा, पर गर्भ की क्रमशः वृद्धि होती गई– यह सब प्रभु का ही प्रभाव था।

गर्भ में स्थित प्रभु के प्रभाव से महारानी की मुखाकृति बड़ी ही शोभायमान हो गई। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे असंख्य रत्नों को धारण करनेवाली पृथ्वी ही हों। अप्सराओं के साथ इन्द्र के द्वारा भेजी गई इन्द्राणी ही जिनकी सेवा कर रही हो, उनकी कान्ति एवं उनके मुख का वर्णन नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार लगातार नौ महीने तक महान उत्सव सम्पन्न होते रहे।

## *जन्मकल्याणक*

देखते-देखते नवमा महीना पूर्ण हो गया। शुभ चैत्र मास की शुक्ला त्रयोदशी के दिन अर्यमा नाम के शुभ योग में एवं शुभ लग्न में त्रिशला महादेवी ने अलौकिक पुत्र को जन्म दिया है। वह पुत्र अपने उज्ज्वल शरीर की कान्ति से अन्धकार को विनष्ट करने वाला, जगत् का हित करने वाला मति-श्रुत-अवधि-तीनों ज्ञान को धारण करने वाला, महा दैदीप्यमान एवं धर्म-तीर्थ का प्रवर्तक तीर्थंकर हुआ।

भगवान महावीर का जन्म तेरस की रात्रि में हुआ है ऐसा जयधवला में वर्णित है-

''आसाढ़ जोण्हपक्खछट्ठीए कुंडलपुरणगराहिव-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस तिसिला-देवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहियणवमासे अच्छिय चइत्तसुक्कपक्ख-तेरसीए रत्तीएउत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो।''

आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन कुंडलपुर नगर के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की रानी त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ नवमास आठ दिन रहकर चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुये वर्द्धमान जिनेंद्र ने जन्म लिया।

उनके जन्म के साथ-साथ सभी दिशायें निर्मल हो गयीं। आकाश में निर्मल वायु बहने लगी। स्वर्ग से कल्प-वृक्षों के पुष्पों की वर्षा हुई एवं चारों निकायों के देवों के आसन कम्पायमान हो गये। स्वर्ग में बिना बजाये ही वाद्यों की ध्वनि होने लगी, मानो वे भी भगवान का जन्मोत्सव मना रहे हों। इसके अतिरिक्त अन्य तीनों जातियों (निकायों) के देवों के महलों में शंख-भेरी आदि के शब्द होने लगे।



कल्पेषु घण्टा भवनेषु शंखो, ज्योतिर्विमानेषु च सिंहनादः।
दध्वान भेरी वनजालयेषु, यज्जन्मनि ख्यात जिनः स एषः।।

कल्पवासी देवों के यहाँ घंटे बजने लगे, भवनवासी देवों के यहाँ शंखध्वनि होने लगी, ज्योतिष्क देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगा और व्यंतर देवों के यहाँ भेरी बजने लगी। जिनके जन्म के समय ऐसा हुआ ये जिन भगवान् वे ही हैं।

जैसे कि आज टेलीविजन या रेडियो का बटन दबाते ही हजारों किलोमीटर दूर के भी दृश्य और संगीत सामने आ जाते हैं किंतु वहाँ तो बटन दबाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी प्रत्युत् तीर्थंकर प्रकृति का पुण्यरूपी बटन अपने आप ही दब गया और ४० करोड़ मील से अधिक ऊँचाई पर स्थित स्वर्गलोक में अतिशय फैल गया। तत्क्षण ही सौधर्म इंद्र असंख्य देव परिवारों के साथ मध्यलोक में आये और जन्मजात शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशों से उनका जन्माभिषेक संपन्न किया।

कुछ विद्वान सहज ही कह देते हैं कि वे तीर्थंकर हम आप जैसे साधारण मानव थे लेकिन ऐसा नहीं है वे तीर्थंकर प्रकृति नाम कर्म के बंध करने तक तो साधारण कहे जा सकते हैं किन्तु तीर्थंकर प्रकृति को बांध लेने के बाद उनमें कुछ विशेष ही अतिशय प्रगट हो जाते हैं इसीलिए तो श्रीसमन्तभद्रस्वामी ने कहा है—

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमासि देवता, श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः।।

हे नाथ! आपने मनुष्य योनि में जन्म तो लिया है किंतु आप मानुषी प्रकृति का उलंघन कर चुके हैं इसलिए आप देवताओं के भी देवता हैं यही कारण है कि आप परमदेवता हैं।

हे जिनधर्म तीर्थंकर! आप हमारे कल्याण के लिए हम पर प्रसन्न होइये।

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भगवान के जन्म का समाचार पाकर उनका जन्मकल्याणक मनाने का विचार करने लगा। उसी समय इन्द्र की आज्ञा से देवों की सेनायें 'जय-जयकार' करती हुई स्वर्ग से उतरीं। उनकी विशाल सेनायें समुद्र से उठती हुई प्रचण्ड लहरों के समान प्रतीत होती थीं। गजराज, अश्व, रथ, गन्धर्व, नर्तकी, पैदल एवं बैल आदि से युक्त सात प्रकार की सेनायें निकलीं। तत्पश्चात् सौधर्म स्वर्ग का स्वामी इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित

ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर चला। उसके चारों ओर देवों की सेनायें फैली हुईं थीं।

इन्द्र के पीछे-पीछे बड़ी विभूतियों के साथ सामानिक देव आदि चल रहे थे। उस समय दुन्दुभी आदि वाद्यों की ध्वनि एवं देवों की 'जय-जयकार' से सारा आकाश गूँजने लगा। मार्ग में कितने ही देव गाते हुए चल रहे थे। कोई नृत्य करता जाता था एवं कोई प्रसन्नता के कारण दौड़ लगा रहा था। उनके छत्र-चमर एवं ध्वजाओं से समस्त आकाश-मण्डल आच्छादित हो गया था। वे चारों निकाय के देव बड़ी विभूति के साथ क्रम-क्रम से कुण्डलपुर जा पहुँचे। उस समय आकाश में ऊपर एवं बीच का भाग देव-देवियों से घिर गया था। राजमहल का आँगन इन्द्रादिक देवों से बिलकुल भर गया था।

इन्द्राणी ने तत्काल प्रसूतिग्रह में जाकर दिव्यशरीरधारी कुमार एवं जिनमाता का दर्शन किया। वे बारम्बार उन्हें प्रणाम कर जिनमाता के आगे खड़ी होकर उनके गुणों की प्रशंसा करने लगीं। इन्द्राणी ने कहा– 'हे महादेवी! आप तीनों जगत् के स्वामी को उत्पन्न करने के कारण समग्र विश्व की माता हो एवं आप ही महादेवी भी हो। महान देव उत्पन्न कर आपने अपना नाम सार्थक कर लिया है। संसार में आपकी तुलना की अन्य कोई स्त्री नहीं है।'

इस प्रकार महादेवी की स्तुति कर इन्द्राणी ने उन्हें निद्रित कर दिया। जब जिनमाता सो गयीं, तो इन्द्राणी ने उनके आगे एक माया का बालक बना कर सुला दिया एवं स्वयं अपने हाथों से शिशु भगवान को उठाकर उनके शरीर का स्पर्श किया। वे बारम्बार उनके मुख का चुम्बन करने लगीं। भगवान के शरीर से निकलती हुई उज्ज्वल ज्योति को देखकर उनके हर्ष का ठिकाना न रहा। तत्पश्चात् वह उस बालक भगवान को लेकर आकाश-मार्ग की ओर चलीं। वे भगवान आकाश में ठीक सूर्य की तरह जान पड़ते थे। समस्त दिक्कुमारियाँ छत्र, ध्वजा, कलश, चमर एवं स्वस्तिक आदि आठ मांगलिक द्रव्यों को लेकर इन्द्राणी के आगे-आगे चल रही थीं।

उस समय इन्द्राणी ने जगत् को आनन्द प्रदान करनेवाले जिनदेव को लाकर बड़ी प्रसन्नता से इन्द्र को सौंप दिया। भगवान की अपूर्व सुन्दरता व उनकी तेजोमय दीप्ति देखकर देवों का स्वामी इन्द्र उनकी स्तुति करने



लगा– 'हे देव! आप हमें परम आनन्द प्रदान करने के लिए बाल-चन्द्रमा की भाँति लोक को प्रकाश देने के लिए प्रगट हुए हो। हे ज्ञानी! आप विश्व के स्वामी इन्द्र-धरणेन्द्र-चक्रवर्ती के भी स्वामी हो। धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक होने के कारण आप ही ब्रह्मा भी हो।'

'हे देव! योगीराज आपको ज्ञानरूपी सूर्य का उदयाचल मानते हैं। आप भव्य पुरुषों के रक्षक एवं मोक्षरूपी स्त्री के पति हो। आप मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकूप में पड़े हुए अनेक भव्य जीवों को धर्मरूपी हाथ का सहारा देकर उद्धार करने वाले हो। संसार के सभी विचारशील व्यक्ति आपकी अलौकिक वाणी सुनकर अपने कर्मों को नष्ट कर परम पवित्र मोक्ष प्राप्त करेंगे एवं अनेक भव्य जीवों को स्वर्ग की प्राप्ति होगी। आज आपके अभ्युदय से सन्त पुरुषों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वस्तुतः आप ही धर्म की प्रवृत्ति के कारण हैं।'

अतएव हे देव! हम आपको प्रणाम करते हैं, आपकी सेवा करते हैं, भक्ति प्रकट करते हैं एवं प्रसन्नतापूर्वक केवल आपकी आज्ञा का पालन करते हैं– अन्य मिथ्यात्वी देव की नहीं।' इस तरह देवों का स्वामी सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भगवान की स्तुति कर उन्हें गोद में उठा कर सुमेरु पर्वत पर चलने को उद्यत हुआ। उसने अन्य देवों को भी सुमेरु पर्वत पर चलने के लिए आज्ञा दी। उस समय सभी देवों ने 'प्रभु की जय हो, आनन्द की वृद्धि हो' आदि शब्दों से 'जय-जयकार' की। उनकी ध्वनि समस्त दिशाओं में फैली।

इन्द्र के साथ-साथ आये देव भी 'जय-जय' शब्द करते हुए आनन्द मनाने लगे। प्रसन्नता के कारण उनका शरीर रोमांचित हो उठा। आकाश में प्रभु के समक्ष अप्सरायें नृत्य करने लगीं। गन्धर्वदेव भी वीणा आदि वाद्यों के साथ गान करने लगे। देवों की दुन्दुभी की आवाज से सारा आकाश-मण्डल गूँज उठा। किन्नरियाँ हर्षित होकर अपने किन्नरों के साथ जिनदेव का गुणगान करने लगीं। उस समय सब देव भगवान का दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक समझने लगे। वे बड़ी देर तक भगवान का दिव्य रूप देखते रहे। इन्द्र की गोद में विराजमान भगवान को ऐशान स्वर्ग के इन्द्र ने दिव्य छत्र लगाया। सनत्कुमार एवं माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र भी चमर ढुराते हुए भगवान की सेवा करने लगे। श्री जिनेन्द्र भगवान की ऐसी विभुता देखकर अनेक देवों ने उसी समय सम्यक्त्व धारण किया। उन्होंने इन्द्र के वचनों को प्रमाण

माना। वे इन्द्रादि देव ज्योति-चक्र को लाँघकर अपने शरीर के आभूषणों की किरणों से आकाश को प्रकाशित करते हुए जा रहे थे।

## *जन्माभिषेक*

परस्पर सैकड़ों उत्सव मनाते हुए वे देव बड़ी विभूति के साथ उत्तुंग सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे। उस सुमेरु पर्वत की ऊँचाई एक लाख योजन की है। पर्वत के आरम्भ में ही 'भद्रशाल वन' है। उस वन में परकोटा एवं ध्वजाओं से सुशोभित कल्याणकारक चार जैन-मन्दिर सुशोभित हैं। उस वन से ५०० योजन ऊपर 'नंदनवन' है, यह पाँच सौ योजन प्रमाण कटनीरूप है। इसकी भी चारों दिशाओं में चार चैत्यालय हैं। इसके बाद साढ़े बासठ हजार योजन की ऊँचाई पर महा रमणीक 'सौमनस वन' है, जहाँ पर सभी ऋतुओं में फल देनेवाले एक सौ आठ वृक्ष हैं एवं जिन-चैत्यालयों की संख्या चार है। उस सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन की ऊँचाई पर चौथा एवं अन्तिम 'पाण्डुक वन' है। वहाँ जिन-चैत्यालयों के ऊँचे-ऊँचे समूह हैं। उस वन की सुन्दरता अपूर्व है। वन के बीच में एक चूलिका है। वह चालीस योजन ऊँची है। उसी चूलिका के ऊपर स्वर्ग है। मेरु की ईशान दिशा में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी, आठ योजन ऊँची एक 'पाण्डुक' नाम की शिला है। वह सिद्ध शिला चन्द्रमा के समान सुशोभित है। छत्र, चमर, स्वस्तिक, दर्पण, कलश, ध्वजा, ठोना, पंखा– ये अष्ट मंगल द्रव्य उस शिला पर रक्खे हुए थे।

शिला के मध्य भाग में वैडूर्य मणि के सदृश रंगीन एक सिंहासन है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एवं ऊँचाई आधा योजन प्रमाण है। जिनेन्द्र भगवान के स्नान-जल से पवित्र हुए रत्नों के तेज से वह सिंहासन ऐसा प्रतीत होता था कि मानो सुमेरु का दूसरा शिखर ही हो। उसके ठीक दक्षिण की ओर दूसरा सिंहासन सौधर्म इन्द्र का है एवं उत्तर दिशा की ओर ईशान इन्द्र के बैठने का आसन है। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने अन्य देवों के साथ महोत्सव सम्पन्न करते हुए, स्नान कराने के उद्देश्य से भगवान को उसी शिला पर विराजमान किया। देवराज ने सर्वप्रथम उस पर्वतराज की परिक्रमा की।

इस प्रकार देवेन्द्र ने पुण्योदय से बड़ी विभूति के साथ वर्तमान



कालखण्ड के अन्तिम तीर्थंकर (शिशु) को शिला पर विराजमान किया अतः भव्यजन यदि ऐसी अतुलनीय सम्पदा एवं अपरम्पार सुख की आकांक्षा रखते हैं, तो उन्हें सोलहकारण भावनाओं के चिन्तवन से निर्मल पुण्य का उपार्जन करना चाहिए। 'तीर्थंकर' सदृश अक्षुण्ण सम्पदा प्राप्त कराने में पुण्य ही सहायक होता है। पुण्य से इस जगत् में पवित्रता की वृद्धि होती है। पुण्य के अतिरिक्त इस जगत् में दूसरी कोई वस्तु सुख प्रदान करनेवाली नहीं है। इस पुण्य का मूल कारण व्रत है। प्राणियों को पुण्य के बल से ही अनेक गुणों की प्राप्ति हुआ करती है।

श्री जिनेन्द्र भगवान के महान अभिषेक उत्सव को देखने की इच्छा रखनेवाले धार्मिक देव उस पर्वतराज को घेर कर बैठ गये। दिक्पाल देव अपनी-अपनी मण्डली को साथ लेकर अपनी दिशा की ओर बैठे। उस स्थान पर देव शिल्पियों ने एक ऐसे मण्डप का निर्माण किया था, जिसमें सभी देव सुखपूर्वक बैठ सकते थे। मण्डप में यत्र-तत्र कल्पवृक्ष की मालायें लटक रही थीं। उन मालाओं पर बैठे हुए भौंरे इस प्रकार गूँज रहे थे, मानो वे प्रभु का गुण-गान ही कर रहे हों।

गन्धर्व देव एवं किन्नरियों ने बड़े ही सुमधुर स्वरों में जिनदेव के कल्याणकारी गुणों का गान आरम्भ किया। अनेक देवियाँ हाव-भावपूर्वक नृत्य करने लगीं। देवों के विविध प्रकार के वाद्य बजने आरम्भ हो गये। कुछ देव पुण्यादि की अभिलाषा से पुष्पों की वर्षा करने लगे। इसके पश्चात् इन्द्र ने अभिषेक करने के लिए प्रस्ताव रख कलशों की रचना की। कलश-निर्माण-मंत्र जाननेवाले सौधर्म इन्द्र ने मोतियों की माला एवं चन्दन से युक्त कलश को हाथ में लिया एवं सब कल्पवासी देव 'जय-जय' शब्द करते हुए कल्याणक संबंधी कार्य करने लगे। इन्द्राणी एवं देवियाँ भी कार्य करने में संलग्न हो गईं। उनके हर्ष का पारावार नहीं था। 'स्वयम्भू' भगवान का शरीर स्वभाव से ही पवित्र है। उनके रक्त का रंग दुग्ध के सदृश श्वेत है। अतएव उनके लिए क्षीर-समुद्र के जल के अतिरिक्त अन्य कोई जल स्पर्श करना उचित नहीं है, ऐसा सोच कर वे देवगण पर्वत से लेकर समुद्र तक कतारें बाँध कर खड़े हो गये। उस समय इन्द्र ने श्रीजिनेन्द्र को स्नान कराने के लिए मोतियों के हार से सुशोभित आठ योजन गहरे एवं एक योजन मुखवाले सुवर्णमय

कलश को पकड़ने के उद्देश्य से दिव्य आभूषणों से युक्त हजार भुजायें बना ली। उस समय इन्द्र की शोभा देखने ही योग्य थी। एक सहस्र हाथों से एक हजार कलशों को पकड़े हुए इन्द्र ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह 'भाजनांग' जाति का कल्पवृक्ष ही हो। सौधर्म इन्द्र ने 'जय-जय' शब्द का गम्भीर उच्चारण करते हुए भगवान के मस्तक पर पहली जलधारा छोड़ी। अन्य देव भी उस समय 'जय हो, हमारी रक्षा करो' आदि जयघोष करने लगे। उनके गम्भीर निनाद से पर्वतराज पर बड़ा कोलाहल मचा। दूसरे देवेन्द्र भी सौधर्म इन्द्र के साथ भगवान के मस्तक पर गंगा की तीव्र धारा के सदृश जलधारा डालने लगे।

वह जलधारा बड़ी तीव्र गति से भगवान के मस्तक पर पड़ने लगी। वह धारा यदि दूसरे किसी पहाड़ पर पड़ती, तो उसके खण्ड-खण्ड हो जाते पर अतुलित बलशाली होने के कारण भगवान के शरीर पर वह पुष्प जैसी सुकोमल अनुभूत हुई। जल के छींटे आकाश में बहुत ऊँचे उछलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानो वे भगवान के शरीर का स्पर्श करने से पापों से मुक्त होकर ऊर्ध्व गति को जा रहे हैं। स्नान-जल के कितने ही छींटे मोतियों जैसे मालूम पड़ते थे। स्नान-जल का ऊँचा प्रवाह उस पर्वतराज के वनों में ऐसे वेग से बढ़ा कि देखने से मालूम होने लगा कि पर्वतराज को खण्ड-खण्ड कर देगा।

भगवान के स्नान किये हुए जल से डूबी हुई वनस्थली ऐसी दीखने लगी, मानो वह दूसरा क्षीरसमुद्र ही हो। महान उत्सवों से सम्पन्न, नृत्य-गीतादि से युक्त उस समय का उत्सव देखकर देवों के आनन्द की सीमा न रही। इन्द्र ने आत्म-शुद्धि के लिए भगवान को शुद्ध स्नान कराया।

स्नान की जलधारा भगवान के शरीर का स्पर्श कर अत्यन्त पवित्र हो गई। अपार पुण्य प्राप्त करानेवाली एवं संसार की समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने वाली वह जलधारा हमें एवं भव्य जीवों को मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करे। जो जलधारा पुण्यास्त्र जलधारा के समान मनवांछित पदार्थों को प्रदान करनेवाली है, वह समस्त भव्य जीवों को इच्छित वस्तुयें प्रदान करे।

वह जलधारा तीक्ष्ण खड्ग के सदृश सत्पुरुषों के विघ्नों का नाश कर देती है। वह दुःख एवं असह्य वेदना का नाश करनेवाली है। जो जलधारा भगवान के शरीर से लगकर पवित्र हो चुकी है, वह हमारे दुःख (कर्मरूपी



मैल) को हटा कर हमें पवित्र करे। इस प्रकार देवों के अधिपति ने भगवान का अभिषेक कर के 'भव्यों को शान्ति हो' ऐसा कहा। उस सुगन्धित जल (गन्धोदक) को देवों ने शुद्धि के लिए मस्तक पर लगाया।

अभिषेक का उत्सव सम्पन्न होने के पश्चात् तीर्थंकर, इन्द्र एवं देवताओं द्वारा पूजे गये उन भगवान श्री महावीर की दिव्य गन्ध, मोतियों के अक्षत, कल्पवृक्ष के पुष्प, अमृत के पिण्डरूपी नैवेद्य, रत्नों के दीप, अष्टांग धूप, कल्पवृक्ष के फल, अर्घ, पुष्पांजलि आदि के साथ पूजा की गई। इस प्रकार इन्द्र ने बड़ी भक्ति के साथ भगवान की प्रार्थना करते हुए अभिषेक उत्सव सम्पन्न किया पुनः इन्द्र ने इन्द्राणी एवं अन्य देवों के साथ भगवान को प्रणाम किया।

उस समय का प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम था। आकाश से सुगन्धित जल के साथ पुष्पों की वर्षा होने लगी। देवों ने मन्द सुगन्ध एवं शीतल वायु प्रवाहित की। वस्तुतः जिन (प्रभु) के जन्माभिषेक का सिंहासन सुमेरु पर्वत है एवं स्नान करानेवाला इन्द्र है, मेघ के समान दुग्ध से भरे हुए कलश हैं, स्वयं देवियाँ नृत्य प्रस्तुत करने वाली हैं, स्नान के लिए क्षीर-समुद्र है एवं जिस जगह देवगण सेवक हैं, भला ऐसे जन्माभिषेक की महिमा का कोई कैसे वर्णन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं कर सकता।

अभिषेक किये हुए भगवान (शिशु) के सर्वांग को इन्द्राणी ने उज्ज्वल वस्त्र से पोंछा। इसके बाद उसने भक्तिपूर्वक सुगन्धित द्रव्यों से उनका लेपन किया। यद्यपि वे प्रभु तीनों जगत् के तिलक थे, फिर भी भक्तिवश उसने उनके मस्तक पर तिलक लगाया। जगत् के चूड़ामणि भगवान के मस्तक में चूड़ामणि रत्न बाँधा गया। यद्यपि भगवान के नेत्र स्वभाव से ही काले थे, फिर भी लोक-व्यवहार दिखलाने के लिए उनके नेत्रों में इन्द्राणी ने अंजन लगाया।

भगवान के कानों में इन्द्राणी ने रत्नों के कुण्डल पहिनाये। प्रभु के कण्ठ में रत्नों का हार, बाहों में बाजूबन्द, हाथों में कड़े एवं अँगुलियों में अँगूठी पहिनाई। कमर में छोटी घण्टियोंवाली मणियों की करधनी पहिनाई, जिसके तेज से सारी दिशायें व्याप्त हो गयीं। प्रभु के पैरों में मणिमय गोमुखी कड़े पहिनाये गये। इस प्रकार असाधारण दिव्य मण्डनों (गहनों) की कान्ति एवं स्वाभाविक गुणों से प्रदीप्त वे प्रभु ऐसे प्रतीत होने लगे, मानो लक्ष्मी के पुंज ही हों।

भगवान का दिव्य शरीर आभूषणों से द्विगुणित शोभायमान हो गया। आभूषणों से सजे हुए इन्द्र की गोद में विराजमान श्री महावीर प्रभु को देखकर इन्द्राणी को परम आश्चर्य हुआ। इन्द्र को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ दोनों नेत्रों से उन्हें देखने से जब इन्द्र को तृप्ति नहीं हुई, तब उसने अपने हजार नेत्र कर लिये। अन्य देव-देवियाँ भी भगवान की रूप-सुधा का पान कर अत्यन्त हर्षित हुईं।

तत्पश्चात् सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र प्रभु की स्तुति करने के लिए प्रस्तुत हुआ। वह तीर्थंकर के पुण्योदय से उत्पन्न उनके गुणों की प्रशंसा करने लगा। उसने कहा–'हे देव! बिना स्नान के ही आप का सर्वांग पवित्र है, पर मैंने अपने पापों की शान्ति के लिये आज भक्तिपूर्वक आप को स्नान कराया है। आप तीनों जगत् के आभूषण हैं, पर मैंने अपने सुखों की प्राप्ति के लिए आपको आभूषणों से विभूषित किया है। हे प्रभो! आपकी महान सत्ता आज सारे संसार पर अपने प्रभाव का विस्तार कर रही है।'

हे देव! कल्याण की कामना रखने वाले लोगों का कल्याण आपके ही द्वारा होगा। आप मोह के सागर में गिरे हुए व्यक्तियों के लिए सहारा हो। आप की अमृतमयी वाणी मोह-शत्रु का विनाश करेगी। आप धर्म- तीर्थरूपी जलपोत के द्वारा भव्य जीवों को संसार-समुद्र से पार उतारोगे। हे नाथ! आपकी वचनरूपी किरणें जीवों के मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार का सर्वथा विनाश करेंगी, इसमें सन्देह नहीं। हे स्वामिन्! आप केवल मोक्ष-प्राप्ति के उद्देश्य से ही नहीं उत्पन्न हुए हैं, आप का उद्देश्य मोक्ष की आकांक्षा रखने वाले जीवों को मार्ग दिखलाना भी है। आप सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की वर्षा करते हुए सत्पुरुषों को निर्मल बनायेंगे। आपका जन्मधारण करना सर्वथा स्तुत्य है।

हे महाभाग! मोक्षरूपी स्त्री आप में आसक्त हो रही है। भव्य जीव तो आपकी प्रतीक्षा करते ही हैं। वे बड़े प्रेम एवं भक्ति के साथ आप की चरण-सेवा के लिए सन्नद्ध हैं। वे आप को मोहरूपी महायुद्ध के विजेता, शरण में आये हुए के रक्षक, कर्मरूपी शत्रुओं के विनाशक एवं मोक्ष-मार्ग प्रशस्त करनेवाला मानते हैं। हे प्रभो! वस्तुतः आज हम आपका जन्माभिषेक कर अत्यन्त कृतार्थ हो गये हैं एवं आप का गुणानुवाद करने से हमारा मन अत्यन्त निर्मल हो गया है।



हे गुणों के अपार सागर! आपकी स्तुति करने से हमारा जन्म सफल हो गया एवं आपकी देह-सेवा से हमारा शरीर भी सफल हुआ। जिस प्रकार खान से निकलने वाले रत्न का संशोधन करने पर उसमें और अधिक चमक आने लगती है, ठीक उसी प्रकार आप स्नान आदि से बहुत सुशोभित हो रहे हैं। हे नाथ! आप समस्त संसार के नाथ हैं एवं आप बिना किसी कारण के ही लोक-हित-चिन्तक हैं। परमानंद प्रदान करने वाले हे विभो! आप को शत शत प्रणाम है। तीनों ज्ञानरूपी नेत्रों के धारक आप को बारम्बार प्रणाम है।

धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक हे भगवन्! उत्तम गुणों के सागर एवं मल-स्वेद आदि से रहित शरीर धारण करने वाले आपको प्रणाम है। हे देव! निर्वाण का मार्ग दिखलाने वाले, कर्मरूपी शत्रुओं के संहारक, पंचेन्द्रियों के मोह को परास्त करनेवाले, पंच-कल्याणकों के भागी, स्वभाव से निर्मल, स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करनेवाले, अनन्त महिमा से मण्डित, बिना स्वार्थ के समस्त संसारी जीवों का हित करनेवाले, मोक्षरूपी भार्या के स्वामी, संसार का अन्धकार नष्ट करनेवाले, तीनों जगत् के स्वामी एवं सत्पुरुषों के गुरु, आप को करबद्ध प्रणाम है।

हे देव, मैं आपकी स्तुति इसलिये नहीं करता कि मुझे तीनों जगत् की सम्पदा प्राप्त हो, बल्कि मुझे ऐसी सम्पदा प्रदान करो, जिससे मोक्ष का मार्ग सुलभ हो। वस्तुतः इस संसार में आप के सदृश अन्य कोई दाता नहीं है।' इस प्रकार श्री महावीर स्वामी की स्तुति कर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने व्यवहार की प्रसिद्धि के लिए उनके दो नाम रख दिये– कर्म-शत्रु पर विजय प्राप्त करने के कारण "श्रीमहावीर"[1] एवं सद्गुणों की वृद्धि होने से 'वर्द्धमान'। इस प्रकार भगवान का नामकरण कर इन्द्र ने देवों के साथ उनको ऐरावत गजराज पर बिठा कर कुण्डलपुर की ओर प्रस्थान किया।

## *कुण्डलपुर में जन्म महोत्सव*

उस समय सारा नगर देव-देवियों से भर गया था। तत्पश्चात् इन्द्र ने थोड़े से देवों को साथ लेकर राजभवन में प्रवेश किया। वहाँ अत्यन्त रमणीक महल के आँगन में रत्नों के सिंहासन पर शिशु-भगवान को

१. महावीर पुराण में इंद्र द्वारा 'श्रीमहावीर' नाम आया है। किंतु उत्तरपुराण में 'वीर' नाम आया है।

विराजमान किया। अपने बन्धु-बान्धवों के साथ महाराज सिद्धार्थ अनुपम गुण-कांतियुक्त पुत्र को देखने लगे।

इन्द्राणी ने जाकर मायामयी निद्रा में लीन महारानी को जगाया। उन्होंने बड़े प्रेम से आभूषणों से युक्त अपूर्व कान्तिवाले पुत्र को देखा। इन्द्राणी सहित इन्द्र को देखकर जगत्-पिता की माता को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने समझ लिया कि आज हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया। इसके पश्चात् ही सब देवों ने मिल कर माता-पिता को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर उनकी विधिवत् पूजा की। इन्द्र ने बड़ी श्रद्धा के साथ माता-पिता की स्तुति की। उसने कहा–'आप दोनों संसार में धन्य हो, आप श्रेष्ठ पुण्यवान एवं चराचर में प्रधान हो।'

आप विश्व के सम्मान एवं विश्व के माता-पिता हो। तीनों लोक के पिता को उत्पन्न करने के कारण आज आपकी मान्यता सारे संसार में है। आपकी कीर्ति अक्षुण्ण है, क्योंकि भविष्य में सबका उपकार एवं कल्याण होने में आप दोनों सहभागी हो। आज से आपका यह गृह चैत्यालय मंदिर के सदृश हो गया है एवं गुरु (तीर्थंकर) के सम्बन्ध से आप हमारे पूज्य एवं मान्य हो'। इस प्रकार इन्द्र ने माता-पिता की स्तुति कर एवं भगवान को उन्हें सौंप कर सुमेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव का पूर्ण विवरण सुनाया। वे दोनों ही जन्माभिषेक का विवरण सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उनके आनन्द की सीमा न रही।

इन्द्र की सम्मति से उन दोनों (माता-पिता) ने बन्धुवर्ग के साथ भगवान का जन्मोत्सव सम्पन्न किया। सर्वप्रथम श्री जिन-मन्दिर में भगवान की अष्ट द्रव्यों से पूजा की गई। इसके पश्चात् ही बन्धुओं एवं दास-दासियों को अनेक प्रकार के दान दिये गये। बन्दी[1] एवं दीन अनाथों को भी उनकी योग्यता के अनुसार दान देकर उन्हें संतुष्ट किया गया। नगर को तोरण एवं मालाओं से खूब सजाया गया। वाद्य एवं शंख की गम्भीर ध्वनि होने लगी। ऐसे ही नृत्य-गीतादि सैकड़ों उत्सवों से वह नगर स्वर्ग जैसा प्रतीत होने लगा।

इस उत्सव से नगर की प्रजा एवं कुटुम्बीजनों को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। पुरवासी एवं नगर-निवासी जनों को प्रसन्नता प्रगट करते देख कर

१. राजा का गुणगान करने वाले।



देवेन्द्र ने भी स्वयं प्रसन्नता प्रकट की। उस समय इन्द्र ने प्रभु की सेवा के लिए देवियों के साथ त्रिवर्ग साधक फल का प्रदायक दिव्य नृत्य-नाटक मंचस्थ किया। इन्द्र का नृत्य आरम्भ होने पर गन्धर्व देवों ने वाद्य एवं गान आरम्भ किये। राजा सिद्धार्थ नवजात पुत्र को गोद में लेकर बैठे। आरम्भ में इन्द्र ने जन्माभिषेक सम्बन्धी दृश्य दिखलाया पुनः जिनेन्द्र के पूर्व जन्म के अवतारों को नाटक की तरह दिखलाता हुआ एवं नृत्य करता हुआ इन्द्र कल्पवृक्ष-सा प्रतीत हो रहा था। रंगभूमि के चारों ओर नृत्य करता हुआ वह इन्द्र विमान की भांति शोभायमान हुआ।

इधर इन्द्र का तांडव नृत्य चल रहा था एवं उधर देवगण भक्तिवश इन्द्र पर पुष्प-वृष्टि कर रहे थे। नृत्य के साथ अनेकों सुमधुर वाद्य बजने आरम्भ हुए। किन्नरी देवियाँ भगवान का गुणगान करने लगीं। इन्द्र अनेक रसों से मण्डित ताण्डव नृत्य कर रहा था। हजारों भुजाओं वाले इन्द्र के नृत्य से पृथ्वी चंचल हो उठी। इन्द्र कभी एक रूप एवं कभी अनेक रूप, कभी स्थूल एवं कभी सूक्ष्म रूप धारण कर लेता था। क्षणभर में समीप, क्षण भर में दूर एवं क्षणभर में ही आकाश में पहुँच जाता था। इस प्रकार वह नृत्य-नाट्य बड़ा ही मनोरंजक एवं प्रभावोत्पादक हुआ। साथ-साथ देवांगनाओं के नृत्य भी बड़े आकर्षक हुए। वे बड़ी लय के साथ गातीं एवं हाव-भाव के साथ नृत्य करती थीं। उनमें से कई तो ऐरावत गजराज के ऊपर विराजमान इन्द्र की भुजाओं में से निकलती हुई एवं पुनः प्रवेश करती हुई कल्पबेलि के समान प्रतीत होती थीं। अनेक अप्सरायें इन्द्र की हस्तांगुलि पर अपनी नाभिरख कर नृत्य करने लगीं। इन्द्र की प्रत्येक भुजा पर नृत्य करती हुई अनेक अप्सरायें सबको प्रसन्न करने लगीं।

अप्सरायें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का नृत्य करती थीं। इस प्रकार नृत्य में सम्मिलित इन्द्र चतुर ऐन्द्रजालिक (पक्का जादूगर) मालूम होता था। इन्द्र की सारी कलायें उन नर्तकी देवियों में बँट गयीं। विक्रिया ऋद्धि से नृत्य करता हुआ इन्द्र भगवान के माता-पिता आदि सभी दर्शकों को मंत्र-मुग्ध करने लगा।

तत्पश्चात् श्री जिनेन्द्र देव की सेवा के लिए अनेक देवियों को तथा असुर कुमार देवों को वहाँ रखकर इन्द्र शेष देवों के साथ बड़ी प्रसन्नतापूर्वक

स्वर्ग में चला गया। इस प्रकार पुण्य के फलस्वरूप तीर्थंकर स्वामी सम्पूर्ण सम्पदाओं से पूर्ण हुए। अतएव भव्यजनों को चाहिये कि वे सर्वदा धर्म का पालन करते रहें।

## *बाल्यकाल की विशेषतायें*

एक बार 'संजय' और 'विजय' नामक दो चारण मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह हुआ, भगवान् के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और प्रभु के दर्शन मात्र से ही उनका संदेह दूर हो गया। इसलिए उन्होंने बड़ी भक्ति से बालक का 'सन्मति' यह नाम रखा। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर प्रतिदिन भगवान् के समय, आयु और इच्छा के अनुसार स्वर्ग से भोगोपभोग की वस्तुओं को लाया करता था। अर्थात् भगवान के भोजन, आभूषण आदि स्वर्ग से ही आते थे।

पूर्व के अध्याय में बतलाया जा चुका है कि भगवान की सेवा के लिए सौधर्म इन्द्र अनेक देव-देवियों को राजमहल में नियुक्त कर गये थे। उनमें से कोई धाय का काम करती, कोई वस्त्र-आभूषण आदि से उनके अंगों को सजाती, कोई अनेक प्रकार के खिलौने आदि के द्वारा उनका विशेष मनोरंजन करती थी। जब वे देवियाँ उन्हें सम्बोधन कर बुलातीं, तो भगवान मुस्कुराते हुए उनके पास चले जाते थे। तीर्थंकर भगवान चन्द्रकला की भाँति बढ़ने लगे। उनकी बाल-सुलभ चपलता से माता-पिता को बड़ा ही आनन्द होता था।

जब उनकी अवस्था कुछ अधिक बढ़ी, तो उनके मुख से सरस्वती की भाँति वाणी निकलने लगी। रत्नजटित भूमि पर चलते हुए उनके आभूषण सूर्य की किरणों की तरह दमदमाते थे एवं वे स्वयं किरणों से परिवेष्टित सूर्य-से प्रतीत होते थे। उनकी क्रीड़ा के लिए देव स्वयं गजराज, अश्व आदि का कृत्रिम रूप ले लिया करते थे। वे उनके साथ क्रीड़ा किया करते थे। इस प्रकार विभिन्न क्रीड़ाओं से स्वयं प्रसन्न हो कर दूसरों को प्रसन्न करते हुए वे भगवान कुमार अवस्था को प्राप्त हुए। पूर्व में उनका जो क्षायिक सम्यक्त्व था, उससे उन्हें समग्र पदार्थों का ज्ञान स्वतः हो गया।

उस समय प्रभु के दिव्य शरीर में स्वाभाविक मति-श्रुति-अवधि आदि ज्ञान वृद्धि को प्राप्त हुए। उन्हें समस्त कलायें एवं विद्यायें स्वतः प्राप्त हो



गयीं। इसलिए वे प्रभु मनुष्यों तथा देवों के लिए गुरु सदृश हो गये, पर उनका कोई गुरु नहीं था। ठीक आठवें वर्ष में भगवान ने बारह व्रतों को ग्रहण किया। प्रभु का शरीर स्वेद-रहित कान्तिवान एवं मल-मूत्रादि से रहित स्वर्ण सदृश था। श्वेत रुधिरयुक्त एवं महान सुगन्धित आठ शुभ लक्षणों से वे शोभायमान थे। आगे चलकर भगवान वज्रवृषभ-नाराच-संहनन एवं समचतुरस्र संस्थान वाले उत्तम रूपयुक्त एवं विशालकाय बलवान पुरुष हुए।

## *संगमदेव द्वारा बालक वर्द्धमान की परीक्षा*

वे सबके हितकारक एवं कर्णमधुर शब्दों का उच्चारण करते थे। इस प्रकार जन्मकाल से ही दिव्य दश अतिशयों से युक्त, धीरज आदि अपरिमित गुण, कीर्ति-कला-विज्ञान आदि सभी से वे सुशोभित थे। उनके शरीर का वर्ण तपाये हुए स्वर्ण के वर्ण जैसा था। वे दिव्य देह के धारक धर्म की प्रतिमूर्ति के सदृश जगत् के धर्मगुरु थे।

एक दिन की घटना है– इन्द्र की सभा में देवों ने भगवान की दिव्य कथा पर चर्चा की। वे कहने लगे– 'देखो, वीर जिनेश्वर तो कुमार अवस्था में ही धीर-वीरों में अग्रणी, अतुल पराक्रमी, दिव्य रूपधारी एवं अनेक गुणों के धारी सांसारिक क्षेत्र में क्रीड़ा करते हुए कितने मनोज्ञ प्रतीत होते हैं।' उसी स्थान पर संगम नाम का एक देव बैठा हुआ था। देवों की बातें सुनकर भगवान की परीक्षा लेने के लिए वह स्वर्ग से चल पड़ा। वह उस वन में आया, जहाँ प्रभु अन्य राजपुत्रों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उस देव ने प्रभु को डराने के उद्देश्य से काले सर्प का विकराल रूप बनाया। वह एक वृक्ष की जड़ से लेकर स्कन्ध तक लिपट गया। उस सर्प के भय से अन्यान्य राजकुमार वृक्ष से कूद कर घबराये हुए दूर भाग गये।

किन्तु कुमार महावीर जरा भी भयभीत नहीं हुए। वे उस विकराल सर्प के ऊपर आरूढ़ होकर क्रीड़ा करने लगे। ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वे माता की गोद में ही क्रीड़ा कर रहे हों। कुमार का धैर्य देख कर सर्परूपी देव बड़ा चकित हुआ। वह प्रगट होकर प्रभु की स्तुति करने लगा। उसने बड़े नम्र शब्दों में कहा– 'हे देव! आप संसार के स्वामी हो, आप महान धीर-वीर हो, आप कर्मरूपी शत्रु

के विनाशक तथा समग्र जीवों के रक्षक हो।'

वह कहने लगा– 'हे देव! आपके अतुल पराक्रम से प्रगट हुई कीर्ति स्वच्छ चांदनी के सदृश लोक के कण-कण में विस्तृत हो रही है। आपका नाम स्मरण करने मात्र से ही प्रयोजनों को सिद्ध करानेवाला धैर्य प्राप्त होता है। अत्यन्त दिव्य मूर्तिवाली सिद्धि-वधू के स्वामी श्री महावीर मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।' इस प्रकार वह देव भगवान की स्तुति कर उनका 'महावीर' नाम सार्थक करता हुआ स्वर्ग को चला गया।[1] कुमार ने भी अपने यशगान को बड़े ध्यान से सुना। देव की स्तुति बड़ी ही कर्णप्रिय तथा भगवान के यश को संसार में विस्तृत करनेवाली थी।

इस प्रकार भगवान श्री महावीर स्वामी का गुणानुवाद बारम्बार हुआ करता था। वे भगवान किन्नरी देवियों द्वारा गाये गये अनेक गुणानुवाद को बड़े ध्यानपूर्वक सुना करते थे। कभी नेत्रों को तृप्त करने वाले स्वर्ग की अप्सराओं के नृत्य तथा विभिन्न प्रकार के नाटक देखते थे, तो कभी स्वर्ग से प्राप्त आभूषण-वस्त्र-माला आदि अन्य को दिखाकर प्रसन्न होते थे। अन्य देव कुमारों के साथ कभी जल-क्रीड़ा तथा कभी अपनी इच्छा से वन-क्रीड़ा करते थे। इस प्रकार क्रीड़ा में संलग्न धर्मात्मा कुमार का समय बड़े सुख से व्यतीत होने लगा।

सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भी अपनी कल्याण-कामना के लिए देवियों से अनेक प्रकार के नृत्य-गीत करवाने लगा। काव्य आदि की गोष्ठी तथा धर्म-चर्चा में समय व्यतीत करते हुए कुमार ने संसार को सुखी करने वाली यौवनावस्था को प्राप्त किया। कुमार के मस्तक का मुकुट धर्म-रूपी पर्वत के शिखर की भाँति शोभायमान हो रहा था। इनके कपोल तथा मस्तक की कान्ति ऐसी मालूम पड़ती थी, मानो पूर्णिमा के चन्द्रमा की ज्योत्स्ना ही हो। प्रभु की सुन्दर भौंहों से शोभित कमल-नेत्रों का वर्णन भला यह तुच्छ लेखनी क्या कर सकती थी, जिसके खुलने-मात्र से संसार के प्राणी तृप्त हो जाते थे।

प्रभु के कानों के कुण्डल बड़े ही भव्य दीखते थे। वे ऐसे शोभायमान होते थे, मानो ज्योतिष्क चक्र से घिरे हुए हों। भला प्रभु के मुखरूपी चन्द्रमा का क्या वर्णन किया जा सकता है, जिसके द्वारा संसार का हित करनेवाली ध्वनि

१. महावीर पुराण के आधार से।



निकलती है। प्रभु की नासिका-ओष्ठ-दन्त एवं कण्ठ की स्वाभाविक सुन्दरता जैसी थी, उसे बतलाने की शक्ति किसी में नहीं है। उनका विस्तृत वक्षस्थल रत्नों के हार से ऐसा सुसज्जित होता था, मानो लक्ष्मी का निवास ही हो।

अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित उनकी भुजायें ठीक कल्पवृक्ष के सदृश प्रतीत होती थीं। अंगुलियों के दशों नख अपनी किरणों से ऐसे प्रतिभासित हो रहे थे, मानो वे धर्म के दश अंग ही हों। उनकी गहरी नाभि सरस्वती एवं लक्ष्मी की क्रीड़ास्थली (सरोवर) जैसी प्रतीत होती थी। प्रभु के वस्त्र-पट की करधनी ऐसी मालूम होती थी, जैसे वह कामदेव को बांधने के लिए नाग-पाश ही हो।

प्रभु के दोनों जानु विस्तीर्ण एवं पुष्ट थे। यद्यपि वे कोमल थे, फिर भी व्युत्सर्गादि तप करने में उनकी समानता नहीं की जा सकती थी। भला प्रभु के ऐसे चरणकमलों की तुलना किससे की जा सकती है, जिनकी सेवा इन्द्र-धरणेन्द्र आदि सभी देव किया करते हैं। इस प्रकार शिखा से नख तक प्रभु के अंग-प्रत्यंग की शोभा अपूर्व थी। उसका वर्णन करना असाध्य है, मानो ब्रह्मा अथवा कर्म ने तीन जगत् में रहनेवाले दिव्य प्रकाशमान, पवित्र एवं सुगन्धित परमाणुओं से प्रभु का अद्वितीय शरीर बनाया था। उस शरीर का पहिला गुण वज्र-वृषभ-नाराच-संहनन था।

प्रभु के शरीर में मद, स्वेद, दोष, रागादिक तथा वातादिक तीन दोषों से उत्पन्न रोग किसी समय भी नहीं होते थे। उनकी वाणी समस्त संसार को प्रिय थी। वह सबको सत्य एवं शुभ मार्ग दिखलानेवाली धर्ममाता के समान थी, दूसरे खोटे मार्ग को व्यक्त करनेवाली नहीं थी। दिव्य शरीर को पाकर वे प्रभु ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे धर्मात्माओं को पाकर धर्मादि गुण सुशोभित होते हैं। भगवान के लक्षण ये हैं —

श्रीवृक्ष, शंख, पद्म, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चमर, श्वेत छत्र, ध्वजा, सिंहासन, दो मछलियाँ, दो घड़े, समुद्र, कछुआ, चक्र, तालाब, विमान, नाग-भवन, पुरुष-स्त्री का जोड़ा, बड़ा भारी सिंह, तोमर, गंगा, इन्द्र, सुमेरु, गोपुर, चन्द्रमा, सूर्य, घोड़ा, बींजना, मृदंग, सर्प, माला, वीणा, बांसुरी, रेशमी वस्त्र, दैदीप्यमान कुंडल, विचित्र आभूषण, फल सहित बगीचा, पके हुए अनाजवाला खेत, हीरा रत्न, बड़ा दीपक, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, सुवर्ण

कमलबेल, चूड़ारत्न, महानिधि, गाय, बैल, जामुन का वृक्ष, पक्षिराज, सिद्धार्थ वृक्ष, महल, नक्षत्र, ग्रह, प्रातिहार्य आदि दिव्य एक सौ आठ लक्षणों से तथा नौ सौ सर्वश्रेष्ठ व्यंजनों से, विचित्र आभूषणों से एवं मालाओं से प्रभु का स्वभाव-सुन्दर, दिव्य, औदारिक शरीर अत्यन्त सुशोभित हुआ।

विशेष वर्णन ही क्या किया जाय? संसार में जितनी भी शुभ-लक्षणरूप सम्पदा एवं प्रिय वचन-विवेकादि गुण हैं, वे सब पुण्य कर्मों के उदय से तीर्थंकर भगवान में स्वतः ही समाविष्ट थे। अधिष्ठित स्वामी सदा उनकी सेवा में रत रहते थे। वे महावीर कुमार धर्म की सिद्धि के लिए मन-वचन-काय की शुद्धि से अतिचार रहित भक्तिपूर्वक गृहस्थों के बारह व्रतों का पालन करते थे। वे सर्वदा शुभ-ध्यान की ओर विचार किया करते थे। पुण्य के शुभोदय से प्राप्त हुए सुखों का उपभोग करते हुए वे कुमार आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

## *भगवान का वैराग्य*

विश्वपति, मन्दरागी उन महाप्रभु ने तीस वर्ष का समय मानो क्षणभर में ही व्यतीत कर दिया। एक बार अच्छे होनहार के कारण चारित्र-मोह-कर्म के क्षयोपशम से उन्हें स्वतः अपने पूर्व के करोड़ों जन्मों का संसार-भ्रमण ज्ञात हो गया। वे इस प्रकार की पूर्व-घटित घटनाओं पर विचार कर बड़े ही क्षुब्ध हुए। उन्हें तत्काल ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे विचार करने लगे कि मोहरूपी महान शत्रु का सर्वनाश करने के लिए रत्नत्रयरूप तप का पालन ही श्रेयस्कर है। उन्होंने सोचा–चारित्र के अभाव में मेरा इतने दिन का समय व्यर्थ ही व्यतीत हो गया, जो अब लौट नहीं सकता। पूर्वकाल में ऋषभादि जितने भी तीर्थंकर हो गये हैं, उनकी आयु पर्याप्त दीर्घ थी, इसलिये वे सब कुछ कर सकने में समर्थ हुए थे, पर हम सरीखे थोड़ी-सी आयुवाले मनुष्य सांसारिक कार्य कुछ भी नहीं कर सकते। वे श्री नेमिनाथादि तीर्थंकर धन्य हैं, जिन्होंने अपने जीवन की अवधि थोड़ी-सी समझकर अल्पायु में ही मोक्ष के उद्देश्य से तपोवन की ओर प्रस्थान किया था अतः संसार हित चाहनेवाले थोड़ी आयुवाले व्यक्तियों को एक क्षण भी संयम के बिना व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।



वस्तुतः वे बड़े अज्ञानी हैं, जो थोड़ी आयु पाकर भी तपस्या के बिना अपने अमूल्य समय को नष्ट कर देते हैं। वे यहाँ तो दुःख भोगते ही हैं एवं नरकादि में यातनायें भी। मैं ज्ञानी होते हुए भी संयम के अभाव में एक अज्ञानी की भाँति भटक रहा हूँ। अब गृहस्थाश्रम में रहकर समय व्यतीत करना उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। वे तीनों ज्ञान ही किस काम के, जिनके द्वारा आत्मा को एवं कर्मों को अलग-अलग न किया जाय तथा मोक्षरूपी लक्ष्मी की उपासना न की जाय? ज्ञान प्राप्त करने का उत्तम फल उन्हीं महापुरुषों को प्राप्त है, जो निष्पाप तप का आचरण करते रहते हैं। दूसरों का ज्ञान तप के बिना नितान्त निष्फल है।

उस व्यक्ति के नेत्र निष्फल हैं, जो नेत्र होते हुए भी अन्धकूप में गिरता है। वही दशा ज्ञानी पुरुषों की है जो ज्ञान होते हुए भी मोहरूपी कूप में गिरे रहते हैं। वस्तुतः अज्ञान (अनजान) में किये गये पाप से छुटकारा तो ज्ञान प्राप्त होने पर मिल भी जाता है, पर ज्ञानी (जानकार) का पाप से मुक्त होना बड़ा ही दुष्कर होता है। अतएव ज्ञानी पुरुषों को मोहादि निंद्य कर्मों के द्वारा किसी प्रकार पाप का बंध नहीं करना चाहिये। इसका कारण यह है कि मोह से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं एवं राग-द्वेष से घोर पाप होता है। उस पाप के फलस्वरूप जीव को बहुत दिनों तक दुर्गतियों में भटकना पड़ता है। वह भटकना भी साधारण नहीं, अनन्तकाल तक का, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

ऐसा समझ कर ज्ञानियों को चाहिये कि वे मोहरूपी शत्रु को वैराग्यरूपी खड्ग से मार दें। कारण, यह मोह ही सारे अनर्थों की जड़ है, पर यह स्मरण रहे कि यह मोह गृहस्थों द्वारा नहीं छोड़ा जा सकता इसलिये पाप के बन्धन गृह को तो त्यागना ही पड़ेगा। गृह-बन्धन बाल्यावस्था में तथा यौवनावस्था में सारे अनर्थ उत्पन्न करता रहता है। अतः धीर-वीर पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से गृह-बन्धन का सर्वथा परित्याग कर देते हैं। वे संसार में पूज्य एवं महापुरुष हैं, जो यौवनावस्था में दुर्जेय कामदेव को भी परास्त करने में समर्थ होते हैं।

यौवनावस्थारूपी राजा ने कामदेव को पंचेन्द्रिय आदि चारों काय के जीवों के जीवन को विकृत करने के लिए भेजा है; पर जब यौवन की अवस्था मन्द हो जाती है, तब उसके साथ बुढ़ापेरूपी फन्दे में बंधे हुए वे कामदेवादि भी ढीले पड़ जाते हैं। अतएव यह उचित होगा कि मैं

यौवनावस्था में ही उग्र तप आरम्भ कर दूँ, जिससे कामदेव एवं पंचेन्द्रिय विषयरूपी शत्रुओं का सर्वनाश हो। इस प्रकार की चिन्ता कर वे महाबुद्धिमान महावीर प्रभु अपने चित्त को निर्मल कर राज्य-भोगादि से विरक्त हुए एवं मोक्ष-साधन में संलग्न हो गये।

## *दीक्षा कल्याणक*

वीर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात् आठों लौकान्तिक देवों ने अपने अवधिज्ञान से यह निश्चय कर लिया कि भगवान के तप-कल्याणक का उत्सव मनाना चाहिये। तत्पश्चात् वे भगवान श्रीमहावीर के पास आये। उन देवों ने अपने पूर्व जन्म में द्वादशांग श्रुत का अभ्यास किया था तथा वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन किया था। चौदह श्रुत के जाननेवाले, देवों में श्रेष्ठ वे देवर्षि कहलाते थे।

कर्मरूपी बैरियों को नाश करने में जो प्रयत्नशील हैं, ऐसे वीर भगवान को प्रणाम कर तथा स्वर्ग से लाये हुए पवित्र द्रव्यों से भगवान की पूजन कर वैराग्यमय परिणाम हो जाय, ऐसी वैराग्यमयी स्तुति के द्वारा वे विद्वान लौकान्तिक देव भगवान का गुणगान करने लगे।

हे वीर प्रभु! आप जगत् के स्वामी हैं, गुरुओं के श्रेष्ठ महान गुरु हैं, ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानी हैं, समझदारों में आप सर्वश्रेष्ठ समझदार हैं। आपको हम विशेष क्या समझा सकते हैं? इसलिये स्वयंबुद्ध तथा सर्व पदार्थों के ज्ञाता आपको हम क्या समझावें? क्योंकि आप स्वयं हमको सद्बुद्धि देनेवाले हैं। जिस प्रकार प्रकाशमान दीपक समस्त पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी तरह आप भी संसार के समस्त पदार्थों को प्रकाशित करेंगे। परन्तु हे भगवन्! हमें सन्तोष होता है कि हम आपको समझाने के बहाने से आपके दर्शन एवं आपकी भक्ति करने को यहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते हैं। आप तो तीन ज्ञान के धारी हैं, आपको भला शिक्षा कौन दे सकता है? क्या सूर्य का दर्शन करने के लिए दीपक की आवश्यकता होती है? कदापि नहीं। हे देव! बलवान मोहरूपी शत्रु को जीतने के लिए आपने जो उद्यम किया है, उसे देख कर संसार-समुद्र पार होने की इच्छा रखने वाले अनेक भव्य आत्माओं का महान हित होगा। आप जैसे दुर्लभ जलपोत को पाकर



असंख्यात भव्य जीव विकट संसार-सागर से पार हो सकेंगे। कितने ही भव्य जीव आपके पवित्र उपदेश से रत्नत्रय को अंगीकार कर उसके द्वारा 'सर्वार्थसिद्धि' जैसे स्थान में गमन करेंगे। कितने ही प्राणी आपकी वाणी को सुनकर मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार का निवारण कर सब पदार्थों के साथ-ही-साथ मोक्ष-लक्ष्मी को भी देखेंगे। हे प्रभु! आप से बुद्धिमानों को मनचाहे इष्ट पदार्थों की सिद्धि होगी। हे देव! आपके प्रसाद से ही स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी।

हे दीनानाथ! मोहरूपी फन्दे में फंसे हुए भव्य प्राणियों को आप ही लगातार सहारा देंगे, क्योंकि आप ही तीर्थ को चलानेवाले धर्म-प्रवर्तक हैं। आपके वचनरूपी मेघ से वैराग्यरूपी अपूर्व वज्र को पाकर असंख्यात बुद्धिमान बहुत ऊँचे मोहरूपी शिखर को बात-की-बात में खण्ड-खण्ड कर देंगे। आपके उपदेश से पापी प्राणी अपने पापों को एवं कामी व्यक्ति काम-शत्रु को शीघ्र ही परास्त कर डालेंगे, इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। हे स्वामी! यह भी निश्चय है कि बहुत से प्राणी आपके चरण-कमलों के सेवन से दर्शन-विशुद्ध्यादि सोलह भावनाओं को स्वीकार करके आप ही के समान महान हो जायेंगे।

हे प्रभो! संसार से बैर करनेवाले, वैराग्यरूपी अस्त्र को रखने वाले आपके अवलोकनमात्र से मोह एवं इन्द्रियरूपी शत्रु अपनी जीवन-लीला समाप्त होने के भय से कांप रहे हैं क्योंकि हे दीनबन्धु! आप बलवान सुभट हैं, दुर्जय परीषहरूपी वीरों को क्षण-मात्र में जीतने की सामर्थ्य रखते हैं। इसलिये हे वीर प्रभो! आप मोह एवं इन्द्रियरूपी बैरियों को जीतने में तथा भव्यात्माओं का उपकार करने के लिए चारों घातिया कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने का शीघ्र उपाय करें, क्योंकि अब यह उत्तम समय तपस्या करने के लिए एवं भव्यों को मोक्ष में ले जाने के लिए आपके हाथ में आया है।

हे वीर प्रभु! आपको प्रणाम है, आप जगत्-हितैषी हैं, आप ही मोक्षरूपी रमणी की प्राप्ति के लिए उद्योगी हैं, इसलिये आपको हम पुनः प्रणाम करते हैं। अपने ही शरीर के भोगों के सुख में इच्छारहित हैं, इसलिये भी आपको प्रणाम है। मोक्षरूपी स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा रखते हैं, इसलिये आपको प्रणाम है। महान पराक्रमी, बाल ब्रह्मचारी, राज्यलक्ष्मी के त्यागी, अविनाशी लक्ष्मी में

लीन आपको प्रणाम है। योगियों के भी आप महान गुरु हैं, इसलिये आपको प्रणाम है। सब जीवों के परम बन्धु हैं, सर्वज्ञ हैं, इसलिये पुनः आपको प्रणाम है।

"हे महान प्रभु! इस स्तुति द्वारा हम यही प्रार्थना करते हैं कि परलोक में चारित्र की सिद्धि के लिए आप हमें पूरी शक्ति दें। हे वीर प्रभु! वह शक्ति मोहरूपी शत्रु का नाश करनेवाली है।" इस प्रकार जगत्पूज्य श्रीवीर भगवान की स्तुति एवं अनेक प्रार्थनाएँ करके वे लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थान को चले गये।

उसी समय समस्त देवादि सहित चारों जाति के इन्द्रों ने घण्टादि के स्वतः बजने से भगवान का संयमोत्सव समझकर भक्तिभाव से अपनी इन्द्राणियों के साथ महान विभूति से विभूषित होकर अपनी-अपनी सवारियों पर आरूढ़ होकर नगरी में प्रवेश किया। देवों की सेना ने अपनी पत्नियों सहित, सवारियों पर चढ़े हुए नगर एवं वन को चारों ओर से घेर लिया। तत्पश्चात् इन्द्र ने भगवान महावीर स्वामी को एक सिंहासन पर बैठाकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए गीत, नृत्य, 'जय-जयकार' शब्दों का उच्चारण करते हुए क्षीर-सागर से भरे हुए एक हजार आठ स्वर्ण के कलशों से उनका अभिषेक किया। इन्द्र ने उन त्रिलोकीनाथ को दिव्य आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत किया, सुगन्धित दिव्य मालायें पहिनाईं। इस तरह इन्द्र ने भगवान को खूब सजाया। तत्पश्चात्, भगवान ने जन्म देनेवाली अपनी माता को ज्ञानामृत से सिंचित प्रभावशाली, सरल एवं मीठे शब्दों में सान्त्वना प्रदान कर, वैराग्य को उत्पन्न करनेवाले उपदेशों के सैकड़ों वाक्यों से अपनी दीक्षा की बात समझा दी। संयमरूपी लक्ष्मी के सहवास-सुख में उद्यमी वे वीर प्रभु हर्ष के साथ समस्त राज-पाट, माता-पिता एवं बन्धुओं को त्याग कर इन्द्र द्वारा लाई हुई दैदीप्यमान 'चन्द्रप्रभा' नाम की पालकी पर आरूढ़ होकर दीक्षा के लिए वन की ओर चले गये। उस समय वे जगत् के स्वामी समस्त देवों से घिरे हुए, दिव्य आभूषणों से युक्त, अत्यन्त मनोज्ञ प्रतीत होते थे।

सबसे पहिले भूमिगोचरी मनुष्यों ने पालकी को उठाया एवं सात पैंड आगे ले जाकर रख दिया। तत्पश्चात् विद्याधर आकाश-मार्ग से सात पैंड ले गये, उसके बाद धर्म से प्रेम रखनेवाले समस्त देवों ने अपना-अपना कन्धा लगाया एवं आकाश-मार्ग से चलने लगे। इस समय की शोभा का



वर्णन करना इसलिये असम्भव है कि जिस पालकी को ले जानेवाले स्वयं इन्द्र एवं स्वर्ग के देवता लोग हों, उसकी अनुपम छटा का वर्णन क्या सामान्य लेखनी द्वारा हो सकता है? उस समय हर्ष से पुलकित समस्त देव पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, वायुकुमार देव गंगाजल के कणों से युक्त मधुर पवन चला रहे थे, कुछ देव भेरी बजा रहे थे। इन्द्र की आज्ञा से उन देवों ने यह घोषणा की कि भगवान का यह समय मोहादि शत्रुओं को जीतने का है। यह सुन समस्त देवों ने हर्षित होकर प्रभु के सामने खूब उत्सव मनाया— 'जयवन्त हो', 'आनन्दयुक्त' हो, 'वृद्धि पाओ'— आदि शब्द होने लगे। दुन्दुभी वाद्यों के शब्द होने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगीं, किन्नरी देवियाँ मधुर शब्द में मोहरूपी शत्रु को जीतने का यश गान करने लगीं। प्रभु के आगे दिक्कुमारी देवियाँ मंगल-अर्घ लेकर चलने लगीं।

महापुराण में लिखा है—

अग्रेसरीषु लक्ष्मीषु पंकजव्यग्रपाणिषु।
संय मंबगलार्थाभि-र्दिक्कुमारीभिरादरात्[1]।।

हाथों में कमल धारण किए हुए लक्ष्मी आदि देवियां आगे-आगे जा रही थीं और बड़े आदर से मंगलद्रव्य तथा अर्घ्य लेकर दिक्कुमारी देवियां उनके साथ-साथ जा रही थीं।

इस प्रकार भगवान महावीर नगर से वन को चले गये। नगरवासियों ने प्रभु की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कितने ही लोग यह भी कहते थे कि अभी जिनराज कुमार ही हैं, फिर भी थोड़ी-सी उम्र में इन्होंने कामरूपी शत्रु को पराजित कर बड़ा भारी उच्च कोटि का काम किया है एवं आज मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए तपोवन को चले जा रहे हैं।

इस तरह के वाक्य सुन कर अन्य लोग भी इसी तरह कहने लगे कि मोह को तथा कामदेव-रूपी शत्रु को प्रभु ने ही जीत पाया है, दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं है। उसके पश्चात् सूक्ष्म विचारवाले इस तरह कहने लगे कि यह सब वैराग्य का ही माहात्म्य है, जो अन्तरंग शत्रुओं का नाश करनेवाला है। वैराग्य के प्रभाव से पंचेन्द्रियरूपी चोरों को मारने के लिए स्वर्ग के भोग, तीन लोक की सम्पदायें त्याग दी जाती हैं, क्योंकि जिसके हृदय में पूर्ण

१. आदिपुराण पर्व ६, पृ. ३८३

वैराग्य का स्रोत बहता हो, वही चक्रवर्ती की विभूति को क्षण-भर में त्याग सकता है। दरिद्र मनुष्य अपनी कच्ची झोपड़ी को भी छोड़ने में समर्थ नहीं है। कुछ मनुष्य यह भी कहते सुने गये कि यह बात सत्य है कि वैराग्य के बिना मन पवित्र नहीं हो सकता। इस तरह की बातचीत करते हुए बहुत-से नगर-निवासी इस कौतुक को देखने के लिए वन में जा पहुँचे। किन्तु भगवान के दर्शन होते ही उनका मस्तक स्वयं झुक गया। इस प्रकार वे त्रिलोकीनाथ नगर के बाहर जा पहुँचे।

जब माता ने भगवान के वन-गमन का संवाद सुना, तो पुत्र-वियोग में वे मूर्च्छित होकर कोमल बेल के समान मुरझा गईं। तत्पश्चात् इस शोक को क्रमशः सहन करती हुई अनेक पुरजनों एवं बंधुओं के साथ उनके पीछे-पीछे चली गईं। जाती हुई माता विलाप करती थीं– 'हे पुत्र! तू तो मुक्ति से प्रेम लगा कर तपस्या करने चला, पर मुझे तेरे बिना कैसे चैन मिलेगा? किस तरह जीवन व्यतीत करूँगी? इस छोटी-सी अवस्था में तू तपस्या के महान उपसर्गों को किस प्रकार सहन करेगा? हे पुत्र! शीत-काल की कँपकँपाती पवन में जब तू दिगम्बर भेष में वन में विचरेगा, तब कैसे उस शीत को सहन करेगा? ग्रीष्म-काल की ज्वालाओं से समस्त वन जल जाता है, उस ज्वाला को कैसे सहेगा? श्रावण-भादों की काली घटाओं को देखकर अच्छे-अच्छे साहसियों के भी छक्के छूट जाते हैं–'हे बेटा! इन सब कष्टों को क्या तू सहन कर सकेगा? बस, ज्यों-ज्यों मेरा हृदय इन सब बातों को विचारता है, त्यों-त्यों मुझे अत्यधिक कष्ट होता है। हे पुत्र! अति दुर्निवार इन्द्रिय-समूहों को, त्रैलोक्य-विजयी कामदेव को एवं कषायरूपी महा शत्रुओं को धैर्यपूर्वक तू अपने वश में कैसे कर सकेगा? हे बेटा! तू बालक है तथा अकेला है; फिर इस भयंकर वन की गुफाओं में किस प्रकार रह सकेगा? क्योंकि उन गुफाओं में नाना प्रकार के हिंसक जंगली जीव रहा करते हैं।'

इस तरह जिन-माता अत्यन्त करुण स्वर में विलाप करती हुई मार्ग में अति कष्ट से पैरों को बढ़ाती हुई चली जा रही थीं कि इतने में उनके पास प्रमुख-प्रमुख देव आये। उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा– 'हे महादेवी! क्या आप इन्हें नहीं पहिचानतीं? ये आपके पुत्र संसार के स्वामी एवं अनुपम शक्तिशाली जगद्गुरु हैं। आत्मवेशी संसाररूपी समुद्र में अपने-आपको



विलीन कर लेने के पहिले ही ये अपना उद्धार तो कर ही लेंगे, साथ ही अन्य कितने ही भव्य जीवों का भी उद्धार कर देंगे–यह ध्रुव सत्य है। जिस तरह कि भयानक सिंह भी मजबूत रस्सी से जकड़े जाने पर सहज ही में वशवर्ती हो जाता है, उसी तरह आपके ये महान पुत्र भी मोहादि पराक्रमी शत्रुओं को तपरूपी रस्सियों से बांधकर उन्हें अपने वश में कर लेंगे। जिनके लिए संसाररूपी समुद्र का दूसरा किनारा पा लेना कतई दुर्लभ नहीं है, ऐसे सामर्थ्यशाली आपके ये पुत्र भला दीनतापूर्वक कल्याणहीन घर में कैसे रह सकेंगे? इनके ज्ञानरूपी तीन नेत्र हैं। संसार को इन्होंने सम्यक्रूपेण जान लिया है। फिर भला, वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर कोई अन्धकूप में क्यों गिरेगा? इसलिये हे महादेवी! आप इस पापरूपी शोक को त्याग दो। त्रैलोक्य को अनित्य समझकर अपने घर जाओ एवं वहीं पर धर्म-साधना में अपने मन को लगाओ। अपनी प्रिय एवं इच्छित वस्तु के वियोग-काल में ज्ञानहीन पुरुष ही शोक किया करते हैं। जो ज्ञानी एवं बुद्धिमान होते हैं, वे सदैव संसार से डरा करते हैं एवं कल्याणकारी धर्म की ही उपासना किया करते हैं।' महत्तर देव की इन बातों को सुनकर जिन-माता कुछ शान्त हो गयीं। उनके हृदय में विवेकरूपी प्रकाशमयी किरणों का प्रादुर्भाव हुआ एवं हृदय का शोकान्धकार दूर हो गया। वे अपने विशाल हृदय में पवित्र धर्म को धारण कर अपने कुटुम्बियों एवं भृत्यजनों को साथ लेकर राजमहल को वापस लौट गयीं।

इसके बाद जिनेन्द्र महावीर प्रभु पार्श्ववर्ती देवों के साथ मानव समाज का मंगल-गान आरम्भ करने के पूर्व ज्ञातृषंडवन नाम के विशाल वन में संयम धारण करने के लिए जा पहुँचे। वह वन अत्यन्त रमणीक था। वहाँ फल-पुष्पों से युक्त शीतल छायावाले सुन्दर-सुन्दर वृक्ष थे, जो अध्ययन एवं ध्यान के लिए नितान्त उपयुक्त थे। महावीर स्वामी अपनी पालकी से उतर कर 'चन्द्रकान्तमयी' एक स्वच्छ शिला पर बैठ गये। उस सुन्दर शिला की शोभा विचित्र थी। महावीर स्वामी के आने के पहिले ही देवों ने आकर उस शिला को सुरम्य बना दिया था। वह शिला गोलाकार थी। उस शिला पर विशाल वृक्षों की शीतल एवं घनी छाया पड़ रही थी। चन्द्रकिरणों से भीगी सुरभित जल की बूंदें उस शिला पर छिड़की हुई थीं। बहुमूल्य रत्नों के चूर्ण द्वारा स्वयं इन्द्राणी के हाथ से उस शिला पर साथिये बनाये हुए थे। ऊपर

वस्त्र का मण्डप बना हुआ था। उसमें ध्वजा एवं रंग-बिरंगी सुन्दर मालाएँ टँगी हुई थीं। चारों ओर धूप का सुगन्धित धुँआ फैल रहा था एवं पास में अनेक मंगल द्रव्य सजाये हुए थे।

महावीर स्वामी उस सुन्दर स्वच्छ शिला पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गये एवं मनुष्यों का कोलाहल शांत हो जाने पर देह इत्यादि की इच्छा से विरक्त एवं मुक्ति-साधन में तत्पर हो कर शत्रु-मित्रादि के प्रति उत्तम समान भाव का चिंतवन करने लगे। सर्वप्रथम उन्होंने पल्यंकासन लगा कर मोह-बन्धन में फँसानेवाले केशों का लोंच किया (केश उखाड़ डाले)। उन्होंने क्षेत्र इत्यादि चेतन एवं अचेतन रूप बाह्य दस परिग्रहों का, मिथ्यात्व इत्यादि चौदह अन्तरंग परिग्रहों का तथा वस्त्र, अलंकार एवं माला इत्यादि वस्तुओं का परित्याग कर दिया तथा मनसा-वाचा-कर्मणा पवित्र होकर शरीरादि में निस्पृहतापूर्वक आत्म-सुख की प्राप्ति में लग गये। बाद में जिनेश्वर महावीर स्वामी सम्पूर्ण पाप-क्रियाओं से निर्मुक्त होकर अट्ठाईस मूल-गुणों के पालन करने में तत्पर हो गये। आतापनादि योग से उत्पन्न उत्तर गुणों को एवं महाव्रत, समिति तथा गुप्ति आदि को उन्होंने धारण किया। वे सबके प्रति समता भाव को धारण करने लगे तथा सम्पूर्ण दोषों से हीन एवं सर्वश्रेष्ठ सामायिक संयम को उन्होंने स्वीकार किया। इस प्रकार उन्होंने मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी तिथि के सायंकाल, हस्त-उत्तरा नक्षत्र के मध्यवाले शुभ समय में दुष्प्राप्य जिन-दीक्षा को ग्रहण किया। यह जिन-दीक्षा मुक्तिरूपी कामिनी की सहचरी (सखी) के समान थी।

महावीर स्वामी के मस्तक में चिरकाल रहने के कारण परम पवित्र उनके केशों को स्वयं इन्द्र ने रत्न-जड़ित मंजूषा (पिटारी) में अपने हाथों से संवार कर रक्खा। फिर इन्द्र ने केशों की पूजा की, उन्हें उत्तम बहुमूल्य वस्त्रों से ढांका एवं समारोहपूर्वक क्षीर-सागर के नैसर्गिक शुद्ध जल में डाल दिया। जब केश जैसी हीन वस्तु का भी, जिनेश्वर के संसर्ग में रहने के कारण, इतना अधिक सम्मान किया जा सकता है; तब जो पुरुष साक्षात् जिनेश्वर भगवान की निरन्तर सेवा-पूजा में लगे रहते हैं, उन्हें संसार में कौन-सी ऐसी अलभ्य वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? उनकी सेवा से सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। इस संसार में जिन भगवान के चरण कमलों के



आश्रय में आ जाने से जिस प्रकार यक्षों को सम्मान प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार अरहन्त प्रभु का जो लोग सहारा लेते हैं, वे चाहे नीच पुरुष ही क्यों न हों, उनकी पूजा होती है एवं उन्हें अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार महावीर स्वामी ने दिगम्बर रूप को धारण किया। जब वे दिगम्बर हो गये, तब उनका शरीर तपाये हुए स्वर्ण जैसा प्रकाशमान एवं तेजस्वी दीखने लगा मानो वह कान्ति एवं दीप्ति का स्वाभाविक तेजोमय समूह ही हो। इसके बाद परम आल्हादित इन्द्र स्वयं परमेष्ठी प्रभु (महावीर) का गुण-गौरव-गान (स्तुति) करने लगे–

हे देव! इस संसार में सर्वश्रेष्ठ परमात्मा आप हो। इस चराचर जगत् के स्वामी आप हो। आप जगद्गुरु हो, गुण-सागर हो, शत्रु-विजेता हो एवं अत्यन्त निर्मल स्वयं हो। हे प्रभो! जब आपके असंख्य एवं अनन्त गुणों का वर्णन स्वयं गणधरादि देव नहीं कर सकते, तब मैं मन्दमति कहाँ तक आपके महान गुण एवं ऐश्वर्यों का वर्णन कर सकूँगा? ऐसा सोच कर यद्यपि मेरी बुद्धि जड़ हो जाती है तथापि आपके प्रति हमारी अचल भक्ति ही आपकी स्तुति करने के लिए मुझे निरन्तर प्रोत्साहित कर रही है। हे योगीन्द्र! जिस प्रकार कि मेघ का आवरण हट जाने पर सूर्य-किरणों की स्वाभाविक छटा बिखर पड़ती है, उसी तरह आज आपके बाह्य एवं आभ्यन्तर मलों के एकदम नष्ट हो जाने के कारण, आपके निर्मल गुण समूह प्रकाशमान हो रहे हैं। हे स्वामिन्! यद्यपि आपने इन्द्रिय-विषयजन्य चंचल सुखों को क्षणस्थायी जान कर त्याग दिया है तथापि आपकी इच्छा अत्यन्त उत्कृष्ट आत्म-सुख की प्राप्ति के लिए लालायित है। अतः आपको 'निस्पृह' (इच्छाहीन) कैसे कहा जा सकता है? यद्यपि आपने स्त्री के शरीर को नितान्त हेय, घृणित एवं अस्पृश्य समझकर उस पर से अपना अनुराग (प्रेम) हटा लिया है तथापि मुक्ति-रूपी स्त्री में तो आपका अनन्य अनुराग बना हुआ है फिर आपको हम 'वीतराग' (प्रीति-रहित) भी कैसे कह सकते हैं? जिन्हें लोग 'रत्न' कहा करते हैं, यद्यपि उन पत्थरों को आपने त्याग दिया है तथापि सम्यक्दर्शन आदि रत्नत्रय को आपने धारण कर लिया है। फिर आपको त्यागी भी कैसे कहा जाये? यद्यपि आपने क्षणभंगुर राज्य-सत्ता को पाप का आश्रय जान कर छोड़ दिया है तथापि नित्य, अविनाशी एवं अनुपमेय त्रैलोक्य के विशाल साम्राज्य पर एकाधिपत्य तो आप ही स्थापित करने जा रहे

हैं। फिर भला आप निस्पृह कैसे रहे? (यह निन्दा-स्तुति है।) हे जगत् के स्वामी! आपने इस संसार की चंचला लक्ष्मी का परित्याग करके लोकोत्तर सम्पत्ति (मोक्ष-लक्ष्मी) को प्राप्त करने की इच्छा की है, फिर आपको इच्छा-रहित कैसे समझा जाय? हे देव! यद्यपि आपने अपने ब्रह्मचर्यरूपी तीक्ष्ण बाण से अपने शत्रु कामदेव को परास्त कर दिया है तथापि कामदेव की स्त्री रति को आपने विधवा भी बना दिया है। फिर आप कृपालु कहाँ रहे? हे नाथ! आपने अपने ध्यान-रूपी अस्त्र से मोह-नृपति के साथ-ही-साथ अन्य सब कर्म-रूपी शत्रुओं का नाश कर डाला है। फिर आपके हृदय में दयालुता कहाँ रही? हे प्रभो! यद्यपि आपने अपने गिने-गिनाये अल्पसंख्यक बन्धुओं का परित्याग कर दिया है तथापि अब तो स्वयं अपने गुणों के प्रभाव से सम्पूर्ण जगत् को ही अपना बन्धु बनाने जा रहे हैं, फिर आपको कैसे कोई बान्धवहीन कह सकता है? हे चतुर शिरोमणि! आपने सांसारिक भोगों को सर्प की काँचुली के समान त्याग कर शुक्लध्यानरूपी अमृत को पी लिया है फिर आपका 'प्रोषधव्रत' कैसे पूर्ण होगा।

हे स्वामिन्! आपकी इस दीक्षा को बुद्धिमानों ने आदर की दृष्टि से देखा है एवं इसने संसार के दाह को एकदम शान्त कर दिया है। आप की यह परम पवित्र महादीक्षा पुण्य-धारा के समान सदैव हम भव्य-जीवों की रक्षा करे। हे देव! मन-वचन-काय की विशुद्धतापूर्वक सम्पूर्ण जगत को पवित्र कर देने वाली दीक्षा को आपने ग्रहण किया है। इसी महादीक्षा के बल पर मोक्ष चाहने वाले आपको प्रणाम है। आप शरीर आदि के सुख से मुख मोड़ चुके हैं, मोक्ष-मार्ग में निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं, तप-रूपी लक्ष्मी से प्रीति करनेवाले हैं, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रहों को त्यागनेवाले हैं। आपको प्रणाम है।

हे ईश! सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप तीन बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत, किन्तु अन्य पार्थिव आभूषणों से हीन आपको प्रणाम है। आपने सम्पूर्ण वस्त्रों का परित्याग कर दिशा-रूपी शून्य वस्त्रों को धारण किया है, ईश्वरत्व प्राप्ति की साधना में सोत्साह प्रवृत्त हैं, अतः आपको प्रणाम है। हे जिनेश्वर! आप सकल परिग्रहों से हीन एवं गुणरूपी सम्पत्तियों से युक्त हैं, आपको मुक्ति अत्यन्त प्यारी है, इसलिये आपको प्रणाम है। हे नाथ! आप इन्द्रियातीत अक्षय सुख में चित्त को लगानेवाले विरक्त पुरुष हैं, उपवास करके शुक्लध्यानरूपी अमृत के भोक्ता हैं, आपको प्रणाम है। हे देव! आप



दीक्षित होकर ज्ञान-रूपी चार नेत्रों के धारक हैं बाल- ब्रह्मचारी हैं, तीर्थेश हैं एवं स्वयंबुद्ध हैं, आपको प्रणाम है। आप कर्मरूपी शत्रुओं की सन्तति के नाशकर्त्ता हैं, गुणसागर हैं एवं उत्तम क्षमा इत्यादि शुभ-लक्षणों से युक्त हैं, आपको प्रणाम है। हे देव! आप इस संसार की सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करनेवाले हैं, परन्तु हम जो आपकी स्तुति कर रहे हैं, वह संसार की उत्तम सम्पदाओं को पाने के लिए नहीं है, किन्तु जिस शक्ति के प्रभाव से बाल्यावस्था में ही आपने तप-दीक्षा ग्रहण की है, वही अतुलनीय शक्ति हमें भी प्राप्त हो। इस तरह देवों के इन्द्र ने भगवान महावीर की पूजा-स्तुति की एवं फिर करबद्ध प्रणाम करके अपार पुण्य का उपार्जन किया।

इसके बाद महावीर स्वामी ने निश्चेष्ट होकर अपने सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों का अवरोध किया एवं कर्म-रूपी शत्रुओं की नाशक योग-क्रिया का अवलम्बन लिया। उस समय वे चेष्टाशून्य, सुन्दर पत्थर की मूर्ति के समान जान पड़ते थे। उस परमोत्तम ध्यान के प्रभाव से उन्हें चतुर्थ मनःपर्यय ज्ञान प्रादुर्भूत हुआ, जो कि महावीर प्रभु के लिए केवलज्ञान प्राप्त होने का निर्देशन था। उन अनुपमेय महान गुणशाली वीरनाथ की मैं स्तुति करता हूँ एवं उन्हें करबद्ध प्रणाम करता हूँ।

## *भगवान का प्रथम आहार*

इसके बाद महावीर स्वामी यद्यपि छः मास पर्यंत अनशन तप करने में पूर्ण योग्य थे तथापि अन्य मुनीश्वरों को चर्या-मार्ग की प्रवृत्ति दिखलाने की इच्छा से उन्होंने 'पारणा' कर लेने का निश्चय किया। यह पारणा (उपवास के बाद का आहार) शरीर की स्थिति को शक्ति प्रदान करती है। महावीर प्रभु ईर्यापथ की शुद्धि को ध्यान में रखकर विचरने लगे-'आहार-दान देनेवाला निर्धन है या धनवान? इत्यादि विकल्प न करके वे अपने चित्त में तीन प्रकार के वैराग्य का चिन्तवन करते हुए अनेक दानियों को अपनी चर्या से सन्तुष्ट करते हुए स्वयं विशुद्ध आहार की खोज में घूमने लगे। वे न तो मन्दगति से चलते थे एवं न एकदम तीव्रगति से ही। साधारण-सी चाल से पैरों को बढ़ाते हुए उन्होंने 'कूल' नाम के एक सुन्दर नगर में प्रवेश किया। उस नगर का राजा 'कूल'[1] अत्यन्त परिश्रम के बाद प्राप्त हुए प्रिय धन-कोष (खजाना) की तरह

१. कहीं-कहीं वकुल नाम भी आता है।

अनायास ही आये हुए जिनदेव जैसे उत्तम पात्र को देखकर परम प्रसन्न हुआ। राजा 'कूल' ने महावीर स्वामी की तीन प्रदक्षिणा दी एवं भूमि पर पाँचों अंगों को फैला कर प्रणाम किया। बाद में आनन्दोल्लास के कारण 'तिष्ठ-तिष्ठ' (ठहरिये-ठहरिये) ऐसा कहा। धर्म-बुद्धि राजा ने प्रभु को एक पवित्र एवं ऊँचे स्थान पर बैठाया एवं उनके कमल जैसे सुन्दर एवं कोमल चरणों को पवित्र जल से धोया। उन प्रभु के पाद-प्रक्षालित जल को राजा ने अपने सम्पूर्ण अंगों में लगाया। इसके बाद राजा ने जलादि आठ प्रकार के प्रासुक द्रव्यों से प्रभु की भक्तिपूर्वक पूजा की। राजा ने अपने मन में विचारा कि आज घर में सुपात्र उत्तम अतिथि के आ जाने से मेरा गार्हस्थ्य-जीवन सफल हुआ। मैं पुण्यकर्मा हूँ। इस पवित्र विवेक से राजा का मन विशेष रूप से पवित्र हो गया। 'हे देव! हे प्रभो! आज आपके आगमन से मैं धन्य हो गया, आपने मेरे घर को परम पवित्र बना दिया'–ऐसा कहने से राजा का वचन पवित्र हो गया। 'पात्रदान करने से मेरा हाथ एवं शरीर पवित्र हो गया'–ऐसा सोचने से राजा की काय-शुद्धि हो गयी। उसने कृत आदि दोषों से हीन प्रासुक अन्न से होनेवाले विमल आहार-दान से 'एषणा' को शुद्ध किया। इस प्रकार उस राजा 'कूल' ने नवधा-भक्तिपूर्वक महान पुण्य का उपार्जन किया।

'यह परम दुर्लभ उत्तम पात्र मेरे भाग्य से प्राप्त हुआ है; इसलिये मेरा यह आहार-दान सविधि एवं पूर्णरूपेण सम्पूर्ण है'–ऐसा श्रेष्ठ विचार करके वह राजा अत्यन्त श्रद्धावान बन कर अपनी शक्ति के अनुसार पात्र-दान के महान उद्योग में लग गया। उस महादान के प्रभाव से उत्पन्न अजस्त्र रत्नवृष्टि एवं कीर्ति की अभिलाषा उस राजा ने नहीं की थी। वह सेवा-पूजा इत्यादि के द्वारा प्रभु की भक्ति में लग गया एवं धर्म-सिद्धि के निमित्त वह जो अन्य कर्मों को किया करता था, उन सबको तिलांजलि दे दी। उस राजा ने सोचा कि यह प्रासुक आहार है एवं दान देने का यही श्रेष्ठ समय है। यह संयमशील पुरुष उपवासों के उन असह्य क्लेशों को धैर्यपूर्वक सहन कर लेते हैं, इसलिये इन्हें उत्तम विधि से आहार देना ही चाहिये। इस प्रकार राजा ने महान फल को देनेवाले श्रेष्ठ-दाता के उत्तम गुणों को अपने में ग्रहण किया। इसके बाद राजा ने हितकारक उत्तम पात्र को मनसा-वाचा-कर्मणा से पवित्र होकर श्रद्धा-भक्ति के साथ विधिपूर्वक खीर का आहार-दान



दिया। वह विशुद्ध आहार प्रासुक एवं स्वादिष्ट था, निर्मल तप को बढ़ानेवाला था एवं क्षुधा-पिपासा को शांत करनेवाला था।

उस राजा के दान से देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए एवं पुण्योदय के कारण राज-प्रासाद के आँगन में रत्नों की अविरल वर्षा हुई। उस रत्न-वर्षा के साथ-ही-साथ पुष्प-वृष्टि एवं जल-वृष्टि भी हुई। उसी समय आकाश-मंडल में 'दुन्दुभि' इत्यादि वाद्यों की गम्भीर तुमुल ध्वनि हुई। उन वाद्यों के मधुर स्वरों को सुनने से ऐसा जान पड़ता था, मानो वे राजा के पुण्य एवं उत्तम यश का गम्भीर स्वर में गान कर रहे हों। उसी समय देव भी 'जय-जय' इत्यादि शुभ शब्दों का उच्चारण करते हुए कहने लगे–'हे प्राणियों! यह परमोत्तम पात्र (महावीर प्रभु) दाता को इस संसार-रूपी महासमुद्र से अनायास ही पार उतार देनेवाले हैं। वह दाता निश्चय ही अत्यन्त भाग्यशाली एवं धन्य है, जिसके यहाँ जिनराज स्वयं पहुँच जायें। ऐसे उत्तम दान के प्रभाव से दाता को स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों ही कालक्रम से प्राप्त होते हैं। इहलोक में तो आपने देखा कि उत्तम पात्र को दान देने से बहुमूल्य अपार रत्न-राशि की प्राप्ति होती है एवं विमल यश का विस्तार होता है; वैसे ही परलोक में भी स्वर्ग-सम्पदायें एवं भोग-विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, जिनके द्वारा चिरकाल तक आनन्दोपभोग किया जाता है।'

रत्न-वृष्टि के कारण राज-महल का आँगन भर गया। आँगन में पड़े हुए उन रत्नों के ढेर को देखकर बहुत-से लोग परस्पर कहने लगे कि देखो, दान का फल कैसा उत्तम होता है? नेत्रों से देखते-ही-देखते यह राज-प्रासाद बहुमूल्य रत्नों की वर्षा से भर गया। दूसरे ने कहा– यहाँ क्या देखते हो? इस अत्यन्त सामान्य फल को ही तुम अपने नेत्रों से देख रहे हो। उत्तम पात्र-दान से तो स्वर्ग एवं मोक्ष के अक्षय सुख भी अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इन लोगों के कथोपकथन को सुनकर एवं अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष पात्र-दान की महिमा को देखकर बहुत-से जीव स्वर्ग एवं मोक्ष की कल्पना करने लगे एवं पात्र-दान की महत्ता में विश्वास रखने लगे।

आहार-दान के समय वीतरागी तीर्थंकर महावीर ने अपने शरीर की स्थिति के विचार से अंजलिरूपी पात्र के द्वारा खीर का आहार ग्रहण किया तथा इस आहार-ग्रहण के उत्तम फल से राजा को अनुगृहीत कर एवं उसके

घर को पवित्र कर पुनः वन को चले गये। राजा ने भी अपने जन्म, घर एवं धन को अप्रत्याशित पुण्योदय से प्राप्त हुआ समझा एवं इसे वे अपना अहोभाग्य समझने लगे। इस श्रेष्ठ दान का मन-वचन-काय द्वारा अनुमोदन करने के कारण अर्थात् दाता एवं पात्र की प्रशंसा करके बहुत से लोगों ने दाता के समान ही उत्तम पुण्य का उपार्जन कर लिया।

## *भगवान पर उपसर्ग*

अतुलनीय पराक्रमी महावीर प्रभु ने सम्पूर्ण कठिन परिषहों को तथा वन के अति उग्र उपद्रवों को अपनी विलक्षण शक्ति के प्रभाव से जीत लिया तथा उत्तम ज्ञान-प्राप्ति के लिए अतिचार-रहित तथा भावना-सहित पंच महाव्रतों का पालन किया। पाँच समिति एवं तीन गुप्ति–इन आठ का वे नित्यशः पालन करते हुये इनके द्वारा कर्म-धूलि को नष्ट करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। वे महावीर प्रभु सर्वश्रेष्ठ थे, इसलिये निरालस होकर सम्पूर्ण अन्यान्य गुणों के साथ ही सारे मूलगुणों की पालना में सचेष्ट होकर किसी भी दोष को स्वप्न में भी अपने पास नहीं फटकने देते थे।

इस प्रकार के परमोज्वल चारित्रयुक्त महावीर प्रभु सम्पूर्ण पृथ्वी पर विहार करते हुए उज्जयिनी नाम की एक महानगरी के 'अतिमुक्तक' नामक श्मशान में जा पहुँचे। उस महाभयानक श्मशान में पहुँचकर महावीर प्रभु ने मोक्ष प्राप्ति के लिए शरीर का ममत्व त्याग कर 'प्रतिमायोग' धारण कर लिया तथा पर्वत के समान अचल भाव से अवस्थित हो गये। सुमेरु पर्वत के उन्नत शृङ्ग के समान एवं परमात्मा के ध्यान में लीन श्रीजिनेन्द्र महावीर प्रभु को देखकर उनके धैर्य की परीक्षा करने के लिए वहाँ के स्थाणु नामक अन्तिम रुद्र को उपसर्ग करने की इच्छा हुई। इसी समय पूर्वकृत कुछ कर्म का असाता उदय जिनेन्द्र के होनेवाला था। वह स्थाणु रुद्र अनेक भयंकर स्थूलकाय पिशाचों को अपने संग लेकर महावीर स्वामी के ध्यान को भंग करने के लिये प्रस्तुत हुआ। रात्रि के समय में वह अपने बड़े-बड़े रक्तवर्ण नेत्रों को फाड़-फाड़ कर देखते हुए जिनेन्द्र प्रभु के सन्मुख आया। उस समय वह किलकारियाँ भर रहा था, नुकीले भयानक दाँतों को दिखला-दिखला कर अट्टहास कर रहा था, भगवान का ध्यान भंग करने के लिए प्रचण्ड ताल,



स्वर एवं लय में गान-वाद्य कर नाच रहा था, साथ ही विशाल मुख-विवर को फाड़े हुए तथा हाथों में तीक्ष्ण आयुधों को धारण किये हुए था। इस प्रकार के महाभयोत्पादक स्वरूप को लेकर वह महावीर स्वामी के सन्मुख आया तथा उनके ध्यान को भंग करने के लिये उन पर बड़ा भारी उपसर्ग किया। परन्तु इन उपद्रवों का महावीर प्रभु पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ा तथा उनका ध्यान यथापूर्व अचल एवं अटूट बना रहा।

जब इतना करने पर भी जिनेन्द्र के ध्यान को वह भंग नहीं कर सका, तब उसने दूसरे उपायों का अवलम्बन लिया। स्थाणुरुद्र ने सर्प, सिंह, गजराज, प्रबल वायु तथा अग्नि इत्यादि के रूप में आकर तथा उत्पीड़क वचनों के द्वारा उग्र उपसर्गों को आरम्भ किया। इन उपसर्गों से निर्बल हृदयों में तो भय का संचार हो सकता था, किन्तु भगवान महावीर के हृदय में डर कहाँ? वे तो लगातार अचल ही बने रहे। उनका ध्यान भंग होना तो दूर रहा, उत्तरोत्तर ध्यान की गम्भीरता बढ़ती ही गयी। जब स्थाणुरुद्र को इतने पर भी सफलता नहीं मिली, तब वह अन्य प्रकार के घोर उपसर्गों को करने लगा। भीलों का रूप धारण कर भयानक शस्त्रास्त्रों को दिखला कर प्रभु के हृदय में उसने भय उत्पन्न करना चाहा, परन्तु इन अनेक उग्र उपद्रवों के होते रहने पर भी जगत् स्वामी जिनेन्द्र (महावीर प्रभु) रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए एवं पर्वत के समान एकदम अचल बने रहे, किंचित्मात्र भी खिन्नता का आभास उनकी मुखाकृति से नहीं मिला। आचार्य देव ने कहा है कि सम्भव है कि अचल पर्वत भी चलायमान हो जाय, परन्तु श्रेष्ठ योगियों का चित्त हजारों उग्र उपद्रव के द्वारा भी कदापि चलायमान नहीं हो सकता। इस संसार में वे ही लोग धन्य हैं, जो कि ध्यानमग्न हो जाने पर अनेक उग्र उपद्रवों के होते रहने पर भी विकारयुक्त होकर ध्यान भंग कदापि नहीं होने देते।

इसके बाद जब जिनेन्द्र (महावीर प्रभु) के ध्यान को भंग करने में स्थाणुरुद्र को कुछ भी सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं रही, तब हताश एवं लज्जित हो कर वह वहीं उनकी स्तुति करने लगा– 'हे देव! इस संसार में आप ही बली हो, आप ही जगद्गुरु हो एवं वीर-शिरोमणि हो, इसलिये आपका नाम 'महावीर' है। आप महा ध्यानी हो, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हो, सकल परीषहों के विजेता हो, वायु के समान निःसंग वीर हो एवं कुलाचल की तरह अचल हो। आप क्षमा में पृथ्वी के समान, गम्भीरता में समुद्र

के समान एवं प्रसन्नचित्त होने के कारण निर्मल जल के समान हो। कर्मरूपी जंगल को नष्ट करने के लिए आप अग्नि-अंगार के समान हो। हे प्रभो! आप त्रिलोक में वर्द्धिष्णु हो एवं श्रेष्ठ बुद्धिशाली होने के कारण 'सन्मति' हो। आप ही महाबली तथा परमात्मा हो। हे नाथ! आप निश्चलरूप के धारण करनेवाले हैं एवं प्रतिमा-योग के धारण करनेवाले हैं। आप परमात्मा-स्वरूप हैं, आपको सदैव नमस्कार है।' इस प्रकार स्थाणुरुद्र ने महावीर प्रभु की स्तुति करके प्रणाम किया तथा भगवान के प्रति ईर्ष्या त्याग कर अपनी प्रिय पत्नी के साथ आनन्दित होकर अपने स्थान को चला गया। जब महापुरुषों के योगजन्य साहस तथा शक्ति को देखकर दुर्जन भी परम आनन्दित हो जाते हैं, तब सत्पुरुषों का तो कहना ही क्या? सज्जनों का तो दूसरों के गुणों पर मुग्ध हो जाने का स्वभाव ही होता है।

## *भगवान महावीर के पाँच नाम*

उत्तरपुराण ग्रन्थ के आधार से भगवान महावीर के पांचों नामों का वर्णन यहां बताया जा रहा है—

विदेहदेश के कुण्डपुर— कुंडलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला ने आषाढ़ शुक्ला षष्ठी तिथि को गर्भ में तीर्थंकर शिशु को धारण किया पुनः नवमाह बाद चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को तीर्थंकर पुत्र को जन्म दिया। त्रिशला माता का दूसरा नाम प्रियकारिणी था। रानी प्रियकारिणी ने उन जिनबालक को जन्म देकर मनुष्यों, तिर्यंचों और देवों पर बहुत भारी प्रेम उत्पन्न किया था इसीलिए उनका "प्रियकारिणी" यह नाम सार्थक हुआ था।

## *वीर और वर्धमान नाम*

तभी सौधर्मेन्द्र ने जिनबालक को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर प्रभु का १००८ कलशों से जन्माभिषेक महोत्सव किया पुनः वस्त्राभरणों से अलंकृत कर "वीर" और "वर्धमान" ऐसे दो नाम रखे थे। कहा भी है—

अलं तदिति तं भक्त्या, विभूष्योद्‌घविभूषणैः।
वीरः श्रीवर्धमानश्चेत्यस्याख्याद्वितयं व्यधात्।। २७६।।



## *सन्मति नाम*

किसी समय "संजय" और "विजय" नाम के दो चारणऋद्धिधारी मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न हुआ तभी वे जन्म के बाद जिनबालक के समीप आए और उनके दर्शनमात्र से उनका संदेह दूर हो गया तभी उन्होंने बड़ी भक्ति से जिनशिशु का "सन्मति" यह नामकरण करके अतीव प्रसन्नता व्यक्त की थी। कहा भी है —

संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानन्तरमेवैन-मभ्येत्यालोकमात्रतः ।। २८२।।
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः ।। २८३।।

## *महावीर नाम*

जिनबालक देव बालकों के साथ क्रीड़ा किया करते थे। एक समय की घटना है कि स्वर्ग में सुधर्मा सभा में प्रभु के गुणों की चर्चा हो रही थी साथ ही उनकी शूरवीरता की भी प्रशंसा हो रही थी तभी संगम नाम के एक देव ने उनकी परीक्षा करनी चाही। एक समय बालक वर्धमान अनेक राजकुमारों के साथ बगीचे में वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ा में तत्पर थे। यह देख संगमदेव ने उन्हें भयभीत करने की इच्छा से बहुत बड़े सांप का रूप धारणकर उस वृक्ष की जड़ से लेकर स्कंध तक लिपट गया। सब बालक उस सांप को देखकर भय से कांप उठे और शीघ्र ही डालियों से कूद - कूदकर इधर - उधर भाग गए। इस महाभय के उपस्थित होने पर भी तीर्थंकर के अवतार "वीर" "वर्धमान" किंचित् भी भयभीत नहीं हुए प्रत्युत् लह्लहाती हुई सौ जिह्वाओं से अत्यन्त भयंकर ऐसे सर्प के फणा पर पैर रखकर खड़े हो गए और उसके साथ क्रीड़ा करते हुए नीचे उतर आए। वर्धमान कुमार की इस क्रीड़ा से प्रसन्न हो संगमदेव ने अपनी विक्रिया समेटकर भगवान की स्तुति की और प्रभु का "महावीर" यह नाम घोषित कर दिया इस सन्दर्भ में उत्तरपुराण की पंक्ति देखिए—

ललज्जिह्वाशतात्युग्रमारुह्य तमहिं विभीः।
कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यंकवत्तदा ।। २९४।।

विजृंभमाणहर्षाम्भोनिधिः संगमकोऽरमः।
स्तुत्वा भवान्महावीर इति नाम चकार सः।। २९५।।

## *महतिमहावीर नाम*

**भगवान महावीर जब तीस वर्ष की अवस्था में थे तब एक समय उन्हें पूर्वभव का** ''जातिस्मरण'' **हो गया। तत्क्षण ही उन्हें वैराग्य हो गया। लौकांतिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त भगवान ने** षण्डवन **या** ज्ञातृवन **में** ''सालवृक्ष'' **के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।**

उज्जयिन्यामथान्येद्युस्तं श्मशानेऽतिमुक्तके।
वर्धमानं महासत्त्वं प्रतिमायोग-धारिणम्।। ३३१।।
निरीक्ष्य स्थाणुरेतस्य दौष्ट्यादृधैर्यं परीक्षितुम्।
उत्कृत्य कृत्तिकास्तीक्ष्णाः प्रविष्टजठराण्यलम्।। ३३२।।
व्यात्ताननाभिभीष्माणि नृत्यन्ति विविधैर्लयैः।
तर्जयन्ति स्फुरद्ध्वानैः साट्टहासैर्दुरीक्षणैः।। ३३३।।
स्थूलवेतालरूपाणि निशि कृत्वा समन्ततः।
पराण्यपि फणीन्द्रेभसिंहवन्ह्यानिलैः समम्।। ३३४।।
किरातसैन्यरूपाणि पापैकार्जनपंडितः।
विद्याप्रभावसंभावितोपसर्गैर्भयावहैः।। ३३५।।
स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थकः।
समहतिमहावीराख्यां कृत्वा विविधाः स्तुतीः।। ३३६।।
उमया सममाख्याय नर्तित्वागादमत्सरः।
पापिनोऽपि प्रतुष्यन्ति प्रस्पष्टं दृष्टसाहसाः।। ३३७।।

**कई वर्षों तक तपश्चरण करते हुए एक बार प्रभु** उज्जयिनी नगरी के अतिमुक्तक **नाम के श्मशान में प्रतिमायोग से विराजमान थे। उन्हें देखकर** रूद्र **ने उनके धैर्य की परीक्षा के लिए रात्रि में बड़े - बड़े वेतालों का रूप लेकर उपसर्ग करना शुरू कर दिया। ये वेताल भयंकर शब्दों को करते हुए अट्टहास और विकराल दृष्टि से डरा रहे थे। इनके सिवाय उसने सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु के साथ भीलों की सेना बनाकर उपसर्ग किया। उस रूद्र द्वारा विद्या के बल से नाना प्रकार के भयंकर उपसर्गों से**



**भी भगवान महावीर ध्यान से चलायमान नहीं हुए। तब उसने अपनी विद्या समेटकर भगवान की खूब स्तुति करते हुए उनका** ''महतिमहावीर'' **नाम रखा पुनः अपनी पत्नी के साथ-साथ प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करते हुए प्रभु की भक्ति करके अपने स्थान पर चला गया।**

कहीं-कहीं यह पांचवां नाम **''अतिवीर''** नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त है।

**इस प्रकार भगवान महावीर के** ''वीर'' **और** ''वर्धमान'' **ये दो नाम** इन्द्र **द्वारा रखे गए हैं।** ''सन्मति'' **नाम** ''संजय-विजय'' **नाम के चारणऋद्धिधारी मुनियों द्वारा रखा गया है।** ''संगमदेव'' **ने** ''महावीर'' **नाम रखा है एवं** ''रुद्र'' **ने** ''महतिमहावीर'' **नाम रखा है।**

**प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की तीर्थंकर परम्परा में पांच नामों से विभूषित अंतिम एवं चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हम और आप सबका कल्याण करें।**

## *चन्दना के बन्धन टूट गये*

**एक बार महामुनि भगवान महावीर कौशाम्बी में आहार के लिए आये। वहां के सेठ वृषभदत्त की पत्नी-भद्रा, सेठ के प्रति संदिग्ध दृष्टि होने से चन्दना को खाने के लिए मिट्टी के सकोरे में कांजी से मिश्रित कोदों का भात दिया करती थी और क्रोधवश उसे सांकल से बांधे रखती थी। किसी दिन उस कौशाम्बी नगरी में आहार के लिए भगवान् महावीर स्वामी आ गये। उन्हें देखकर चन्दना उनके सामने जाने लगी। उसी समय उसके सांकल के सब बन्धन टूट गये, उसके शिर पर केश आ गये, वस्त्र-आभूषण सुन्दर हो गये। शील के माहात्म्य से मिट्टी का सकोरा स्वर्ण पात्र और कोदों का भात चावल की खीर बन गया। उस चन्दना ने भगवान को पड़गाह कर नवधा भक्ति से आहारदान दिया। उसके वहाँ पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई अनंतर अपने बंधुओं के साथ उसका समागम हो गया।**

## *महासती चंदना का संक्षिप्त परिचय*

**सिन्धु नामक देश की वैशाली नगरी में चेटक नामका अतिशय प्रसिद्ध, विनीत और जिनेन्द्र देव का अतिशय भक्त राजा था। उसकी रानी का नाम**

सुभद्रा था। उनके दश पुत्र हुए जो कि धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त, हरिदत्त, कम्बोज, कम्पन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास नाम से प्रसिद्ध थे तथा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों के समान जान पड़ते थे। इन पुत्रों के सिवाए सात ऋद्धियों के समान सात पुत्रियां भी थीं। जिनमें सबसे बड़ी प्रियकारिणी थी, उससे छोटी मृगावती, उससे छोटी सुप्रभा, उससे छोटी प्रभावती, उससे छोटी चेलिनी, उससे छोटी ज्येष्ठा और सबसे छोटी चन्दना थी।

विदेह देश के कुण्डपुर नगर में नाथवंश के शिरोमणि एवं तीनों सिद्धियों से सम्पन्न राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। पुण्य के प्रभाव से प्रियकारिणी उन्हीं की रानी हुई थीं। वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी में चन्द्रवंशी राजा शतानीक रहते थे। मृगावती नाम की दूसरी पुत्री उनकी स्त्री हुई थी। दशार्ण देश के हेमकच्छ नामक नगर के स्वामी राजा दशरथ थे जो कि सूर्यवंशरूपी आकाश के चन्द्रमा के समान जान पड़ते थे। सूर्य की निर्मलप्रभा के समान सुप्रभा नाम की तीसरी पुत्री उनकी रानी हुई थी, कच्छ देश की रोरुका नामक नगरी में उदयन नाम का एक बड़ा राजा था। प्रभावती नामकी चौथी पुत्री उसी की हृदयवल्लभा हुई थी। अच्छी तरह शीलव्रत धारण करने से इसका दूसरा नाम शीलवती भी प्रसिद्ध हो गया था। पांचवी पुत्री चेलना राजगृही के राजा श्रेणिक की पट्टरानी हुई थीं तथा ज्येष्ठा और चंदना बालब्रह्मचारिणी थीं।

किसी एक समय वह चन्दना अपने परिवार के लोगों के साथ अशोक नामक वन में क्रीड़ा कर रही थी। उसी समय दैवयोग से विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के सुवर्णाभ नगर का राजा मनोवेग विद्याधर अपनी मनोवेगा रानी के साथ स्वच्छन्द क्रीड़ा करता हुआ वहाँ से निकला और क्रीड़ा करती हुई चन्दना को देखकर काम के द्वारा छोड़े हुए बाणों से जर्जर शरीर हो गया। वह शीघ्र ही अपनी स्त्री को घर भेजकर रूपिणी विद्या से अपना दूसरा रूप बनाकर उसे सिंहासन पर बैठा आया और अशोक वन में आकर तथा चन्दना को लेकर शीघ्र ही वापिस चला गया। उधर मनोवेगा उसकी माया को जान गई जिससे क्रोध के कारण उसके नेत्र लाल होकर भयंकर दिखने लगे। उसने उस विद्या देवता को बाएं पैर की ठोकर देकर मार दिया जिससे वह अट्टहास करती हुई सिंहासन से उसी समय चली गई। तदनन्तर वह मनोवेगा रानी आलोकिनी नाम की विद्या से अपने पति की सब चेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आधे



मार्ग में चन्दना सहित लौटते हुए पति को देखकर बोली कि यदि आप अपना जीवन चाहते हो तो इसे छोड़ दो। इस प्रकार क्रोध से उसने उसे बहुत ही डाँटा। मनोवेग अपनी रानी से बहुत ही डर गया। इसलिए उसने हृदय में बहुत ही शोककर सिद्ध की हुई पर्णलघ्वी नामकी विद्या से उस चन्दना को भूतरमण नामक वन में ऐरावती नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया।

पञ्चनमस्कार मंत्र का जप करने में तत्पर रहने वाली चन्दना ने वह रात्रि बड़े कष्ट से बिताई। प्रातःकाल जब सूर्य का उदय हुआ तब भाग्यवश एक कालक नामका भील वहां स्वयं आ पहुँचा। चन्दना ने उसे अपने बहुमूल्य देदीप्यमान आभूषण दिये और धर्म का उपदेश भी दिया जिससे वह भील बहुत ही संतुष्ट हुआ। वहीं कहीं भीमकूट नामक पर्वत के पास रहने वाला एक सिंह नाम का भीलों का राजा था, जो कि भयंकर नामक पल्ली का स्वामी था। उस कालक नामक भील ने वह चन्दना उसी सिंह राजा को सौंप दी। सिंह पापी था अतः चन्दना को देखकर उसका हृदय काम से मोहित हो गया। वह क्रूर ग्रह के समान निग्रह कर उसे अपने आधीन करने के लिए उद्यत हुआ। यह देख उसकी माता ने उसे समझाया कि हे पुत्र! तू ऐसा मत कर, यह प्रत्यच्छ देवता है, यदि कुपित हो गई तो कितने ही संताप, शाप और दुःख देने वाली होगी। इस प्रकार माता के कहने से डरकर उसने स्वयं दुष्ट होने पर भी वह चन्दना छोड़ दी। तदनन्तर चन्दना ने उस भील की माता के साथ निश्चिन्त होकर कुछ काल वहीं पर व्यतीत किया।

अथानन्तर-वत्स देश के कौशाम्बी नामक श्रेष्ठ नगर में एक वृषभसेन नाम का सेठ रहता था। उसका मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था जो कि उस भीलराज का मित्र था। भीलों के राजा ने वह चन्दना उस मित्रवीर को दे दी और मित्रवीर ने भी बहुत भारी धन के साथ भक्तिपूर्वक वह चन्दना अपने सेठ के लिए सौंप दी। किसी एक दिन वह चन्दना उस सेठ को जल पिला रही थी उस समय उसके केशों का कलाप छूट गया था और जल से भीगा हुआ पृथिवी पर लटक रहा था। उसे वह बड़े यत्न से एक हाथ से संभाल रही थी। सेठ की स्त्री भद्रा नामक सेठानी ने जब चन्दना का रूप देखा तो वह शंका से भर गई। उसने मन में समझा कि हमारे पति का इसके साथ संपर्क है। ऐसा विचार कर वह बहुत ही कुपित हुई। क्रोध के कारण

उसके ओंठ काँपने लगे। उस दुष्टा ने चन्दना को साँकल से बाँध दिया तथा खराब भोजन और ताड़न-मारण आदि के द्वारा वह उसे निरन्तर कष्ट पहुंचाने लगी परन्तु चन्दना यही विचार करती थी कि यह सब मेरे द्वारा किए हुए अशुभ-कर्म का फल है। यह बेचारी सेठानी क्या कर सकती है? ऐसा विचारकर वह निरन्तर आत्मनिन्दा करती रहती थी। उसने यह सब समाचार अपनी बड़ी बहिन मृगावती के लिए भी कहलाकर नहीं भेजे थे।

तदनन्तर किसी दूसरे दिन भगवान् महावीर स्वामी ने आहार के लिए उसी नगरी में प्रवेश किया। उन्हें देख चन्दना बड़ी भक्ति से आगे बढ़ी। आगे बढ़ते ही उसकी साँकल टूट गयी और आभरणों से उसका सब शरीर सुन्दर दिखने लगा। उन्हीं के भार से मानो उसने झुककर शिर से पृथिवी तल का स्पर्श किया, उन्हें नमस्कार किया और विधिपूर्वक पड़गाहन कर उन्हें आहार दिया। इस आहार दान के प्रभाव से वह मानिनी बहुत ही संतुष्ट हुई, देवों ने उसका सम्मान किया, रत्नधारा की वृष्टि की, सुगन्धित फूल बरसाए, देव-दुन्दुभियों का शब्द हुआ और दान की महिमा की घोषणा होने लगी सो ठीक ही है क्योंकि उत्कृष्ट पुण्य अपने बड़े भारी फल के साथ तत्काल ही फलते हैं।

तदनन्तर चन्दना की बड़ी बहिन मृगावती यह समाचार जानकर उसी समय अपने पुत्र उदयन के साथ उसके समीप आई और स्नेह से उसका आलिंगन कर पिछला समाचार पूछने लगी। तब वह पिछला समाचार सुनकर बहुत ही व्याकुल हुई। तदनन्तर रानी मृगावती उसे अपने घर ले जाकर सुखी हुई। यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों ही भय से घबड़ाये और मृगावती के चरणों की शरण में आये। दयालु रानी ने उन दोनों से चन्दना के चरण-कमलों में प्रणाम कराया। चन्दना के क्षमा कर देने पर वे दोनों बहुत ही प्रसन्न हुए और कहने लगे कि यह मानो मूर्तिमती क्षमा ही है। इस समाचार के सुनने से उत्पन्न हुए स्नेह के कारण वैशाली से चंदना के भाई-बंधु भी उसके पास आ गये।

कालांतर में चंदना ने भगवान महावीर के समवसरण में आर्यिका दीक्षा लेकर सभी आर्यिकाओं में गणिनीपद को प्राप्त किया है।



## *केवलज्ञान कल्याणक*

जगद्बंधु वर्द्धमान भगवान ने निर्ग्रंथ मुद्रा में नगर, वन आदि में विहार करते हुये छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष व्यतीत कर दिये। श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं-

ग्रामपुरखेटकर्वट-मटम्बघोषाकरान् प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानैर्द्वादशवर्षाण्यमरपूज्यः।।

देवों द्वारा पूज्य भगवान महावीर ने उग्र-उग्र तपश्चरण करते हुये ग्राम, पुर, खेट कर्वट, मटम्ब, पत्तन, घोष, आकर आदि स्थलों में विहार करते हुये दीक्षित जीवन में बारह वर्ष व्यतीत कर दिये।

किसी एक दिन वे भगवान जृंभिक ग्राम के समीप ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नाम के वन के मध्य सालवृक्ष के नीचे रत्नमयी एक बड़ी शिला पर दो दिन के उपवास का नियम लेकर प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। शुक्लध्यान में आरूढ़ भगवान वैशाख शुक्ला दशमी के दिन अपराण्ह काल में हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के बीच में चन्द्रमा के रहते हुये परिणामों की विशुद्धि को बढ़ाते हुये क्षपकश्रेणी में स्थित हो गये।

उसी समय द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा घातिया कर्मों को नष्ट कर भगवान ने दिव्य केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। उसी समय भगवान के जन्म समय के समान ही चारों प्रकार के देवों के यहां बिना बजाये बाजे बजने लगे। सौधर्मेंद्र ने भगवान के केवलज्ञान की प्रगटता को जानकर तत्क्षण ही कुबेर को समवसरण रचना बनाने की आज्ञा दी एवं स्वयं चारों निकाय के देवों के साथ अर्धनिमिष मात्र में वहाँ आ गया।

## *भगवान महावीर का समवसरण*

केवलज्ञान के उत्पन्न होते ही तीर्थंकर का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से पाँच हजार धनुष[1] (२०००० हाथ प्रमाण) ऊपर चला जाता है। उस समय तीनों लोकों में अतिशय क्षोभ उत्पन्न होता है और सौधर्म आदि इन्द्रों के आसन कंपायमान हो जाते हैं। भवनवासी देवों के यहाँ अपने आप शंख का

१. यहां धनुष में ४ हाथ माने हैं अतः २०००० हाथ ऊपर चला जाता है।

नाद होने लगता है। व्यंतर देवों के यहाँ भेरी बजने लगती है, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगता है और कल्पवासी देवों के यहाँ घण्टा बजने लगता है। इंद्रों के मुकुट के अग्रभाग स्वयमेव झुक जाते हैं और कल्पवृक्षों से पुष्पों की वर्षा होने लगती है। इन सभी कारणों से इन्द्र और देवगण तीर्थंकर के केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर भक्तियुक्त होते हुये सात पैर आगे बढ़कर भगवान् को प्रणाम करते हैं। जो अहमिन्द्रदेव हैं, वे भी आसनों के कंपित होने से केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर सात पैर आगे बढ़कर वहीं से परोक्ष में जिनेंद्रदेव की वंदना कर अपना जीवन सफल कर लेते हैं। सोलह स्वर्ग तक के देव-देवियाँ तो भगवान् की वंदना के लिये चले आते हैं।

उसी क्षण सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर विक्रिया के द्वारा तीर्थंकर के समवसरण (धर्मसभा) को विचित्र रूप से रचता है। उस समवसरण के अनुपम संपूर्ण स्वरूप का वर्णन करने के लिये साक्षात् सरस्वती भी समर्थ नहीं हैं। यहाँ पर लेशमात्र वर्णन किया जाता है[1]। इस समवसरण के वर्णन में यहाँ ३१ विषय बताये जा रहे हैं—

सामान्य भूमि, सोपान, विन्यास, वीथी, धूलिशाल, चैत्यप्रासाद भूमि, नृत्यशाला, मानस्तम्भ, वेदी, खातिका, वेदी, लताभूमि, साल, उपवनभूमि, नृत्यशाला, वेदी, ध्वजाभूमि, साल, कल्पभूमि, नृत्यशाला, वेदी, भवनभूमि, स्तूप, साल, श्रीमण्डप, ऋषि आदि गणों का विन्यास, वेदी, प्रथम पीठ, द्वितीय पीठ, तृतीय पीठ और गंधकुटी।

*१. सामान्य भूमि* — समवसरण की संपूर्ण सामान्य भूमि सूर्यमण्डल के सदृश गोल, इन्द्रनीलमणिमयी होती है। यह सामान्यतया बारह योजन प्रमाण होती है। विदेह क्षेत्र के संपूर्ण तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का यही प्रमाण है। भरत और ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों की समवसरण भूमि का उत्कृष्ट प्रमाण यही है, जघन्य प्रमाण एक योजन मात्र है, मध्यम के अनेक भेद हैं। जैसे कि भगवान ऋषभदेव का समवसरण बारह योजन का था शेष तीर्थंकरों का घटते-घटते अंतिम भगवान महावीर का एक योजन मात्र था।

*२. सोपान* — समवसरण में चढ़ने के लिए भूमि से १ हाथ ऊपर से आकाश में चारों ही दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ऊपर-ऊपर २०,०००

१. यह समवसरण का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ के आधार से है।



सीढ़ियाँ होती हैं। ये सीढ़ियाँ १ हाथ ऊँची और इतनी ही विस्तार वाली रहती हैं ये सब स्वर्ण से निर्मित होती हैं। देव-मनुष्य और तिर्यंच गण अंतर्मुहूर्त मात्र में ही इन सभी सीढ़ियों को पार कर समवसरण में पहुँच जाते हैं।

*३. विन्यास* — समवसरण में चार कोट, पाँच वेदियाँ, इनके बीच में आठ भूमियाँ और सर्वत्र प्रत्येक अन्तर भाग में तीन पीठ होते हैं। इस क्रम से समवसरण में सारी रचनायें रहती हैं। इन सबका वर्णन क्रम से आ जावेगा।

*४. वीथी* — प्रत्येक समवसरण में प्रारम्भ से लेकर प्रथम पीठ (कटनी) पर्यंत, सीढ़ियों की लम्बाई के बराबर विस्तार वाली चार वीथियाँ होती हैं। यहाँ 'वीथी' से जाने का मार्ग (सड़क) समझना चाहिये। इन वीथियों के पार्श्व भाग में स्फटिकपाषाण से बनी हुई वेदियाँ होती हैं। ये बाउंड्रीवाल के समान हैं। जो आठ भूमियाँ कही जायेंगी उन आठों भूमियों के मूल में वज्रमय कपाटों से सुशोभित बहुत से तोरणद्वार होते हैं। जिनमें देव, मनुष्य और तिर्यंचों का संचार बना रहता है।

*५. धूलिसाल* — सबके बाहर विशाल एवं समान गोल, मानुषोत्तर पर्वत के आकार वाला धूलिसाल नाम का कोट होता है यह पंचवर्णी रत्नों से निर्मित होता है, इसलिये इसका धूलिसाल नाम सार्थक है। इस कोट में मार्ग, अट्टालिकायें और पताकायें रहती हैं। चार गोपुर द्वार (मुख्य फाटक) होते हैं यह तीनों लोकों को विस्मित करने वाला बहुत ही सुन्दर दिखता है। इस कोट के चारों गोपुर द्वारों में से पूर्वद्वार का नाम 'विजय' है, दक्षिणद्वार का 'वैजयंत' है, पश्चिमद्वार को 'जयंत' और उत्तरद्वार को 'अपराजित' कहते हैं। ये चारों द्वार सुवर्ण से बने रहते हैं, तीन भूमियों (खनों) से सहित, देव और मनुष्य के जोड़ों से संयुक्त और तोरणों पर लटकती हुई मणिमालाओं से शोभायमान होते हैं। प्रत्येक द्वार के बाहर और मध्य भाग में, द्वार के पार्श्व भागों में मंगलद्रव्य, निधि और धूपघट से युक्त विस्तीर्ण पुतलियाँ होती हैं। झारी, कलश, दर्पण, चामर, ध्वजा, पंखा, छत्र और सुप्रतिष्ठ (ठोना) ये ८ मंगलद्रव्य हैं। ये प्रत्येक १०८-१०८ होते हैं। काल, महाकाल, पाण्डु, माणवक, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल और नानारत्न, ये नव निधियाँ प्रत्येक १०८ होती हैं। ये निधियाँ क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्य-माला आदि, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, महल, आभरण और सम्पूर्ण रत्नों को देती हैं।

वहाँ एक-एक पुतली के ऊपर गोशीर्ष, मलयचन्दन और कालागरु आदि धूपों के गंध से व्याप्त एक-एक धूप घट होते हैं।

इन विजय आदि द्वार के प्रत्येक बाह्य भाग में सैकड़ों मकरतोरण और अभ्यंतर भाग में सैकड़ों रत्नमय तोरण होते हैं। इन द्वारों के बीच दोनों पार्श्व भागों में एक-एक नाट्यशाला होती है जिसमें देवांगनायें नृत्य करती रहती हैं। इस धूलिसाल के चारों गोपुर द्वारों पर ज्योतिष्कदेव द्वार रक्षक होते हैं जो कि हाथ में रत्नदण्ड को लिये रहते हैं। इन चारों दरवाजों के बाहर और अन्दर भाग में सीढ़ियाँ बनी रहती हैं जिनसे सुखपूर्वक संचार किया जाता है। प्रत्येक समवसरण के धूलिसाल कोट की ऊँचाई अपने तीर्थंकर के शरीर से चौगुनी होती है। इस कोट की ऊँचाई से तोरणों की ऊँचाई अधिक रहती है और इससे भी अधिक विजय आदि द्वारों की ऊँचाई रहती है।

*६. चैत्यप्रासाद भूमि* - धूलिसाल के अभ्यंतर भाग में 'चैत्यप्रासाद' नामक भूमि सकलक्षेत्र को घेरे हुये बनी रहती है। इसमें एक-एक जिन भवन के अन्तराल से ५-५ प्रासाद बने रहते हैं जो विविध प्रकार के वनखण्ड और बावड़ी आदि से रमणीय होते हैं। इन जिन भवन और प्रासादों की ऊँचाई अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारह गुणी रहती है।

*७. नृत्यशाला* - प्रथम पृथ्वी में पृथक्-पृथक् वीथियों के दोनों पार्श्व भागों में उत्तम सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित दो-दो नाट्यशालायें होती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में ३२ रंगभूमियाँ और प्रत्येक रंगभूमि में ३२ भवनवासी देवियाँ नृत्य करती हुई नाना अर्थ से युक्त दिव्य गीतों द्वारा तीर्थंकरों के विजय के गीत गाती हैं और पुष्पाञ्जलि क्षेपण करती हैं। प्रत्येक नाट्यशाला में नाना प्रकार की सुगंधित धूप से दिग्मंडल को सुवासित करने वाले दो-दो धूपघट रहते हैं।

*८. मानस्तम्भ* - प्रथम पृथ्वी के बहुमध्य भाग में चारों वीथियों के बीचों-बीच समान गोल मानस्तम्भ भूमियाँ होती हैं। उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुर द्वारों से सुन्दर, कोट होते हैं। इनके भी मध्य भाग में विविध प्रकार के दिव्य वृक्षों से युक्त वनखण्ड होते हैं। इनके मध्य में पूर्वादि दिशाओं में क्रम से सोम, यम, वरुण और कुबेर इन लोकपालों के रमणीय क्रीड़ानगर होते हैं। उनके अभ्यंतर भाग में चार गोपुरद्वार से युक्त कोट और इसके आगे



वनवापिकायें होती हैं जिनमें नीलकमल खिले रहते हैं। उनके बीच में लोकपालों के अपनी-अपनी दिशा तथा चार विदिशाओं में भी दिव्य क्रीड़ानगर होते हैं। उनके अभ्यंतर भाग में उत्तम विशाल द्वारों से युक्त कोट होते हैं और फिर इनके बीच में पीठ होते हैं। इनमें से पहला पीठ वैडूर्यमणिमय, उसके ऊपर दूसरा पीठ सुवर्णमय और उसके ऊपर तीसरा पीठ बहुत वर्ण के रत्नों से निर्मित होता है। ये तीन पीठ तीन कटनी रूप होते हैं। इन पीठों के ऊपर मानस्तम्भ होते हैं। इन मानस्तम्भों की ऊँचाई अपने-अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारहगुणी होती है। प्रत्येक मानस्तम्भ का मूलभाग वज्र से युक्त और मध्यम भाग स्फटिकमणि से निर्मित होता है। इन मानस्तम्भों के उपरिमभाग वैडूर्यमणिमय रहते हैं। ये मानस्तम्भ गोलाकार होते हैं। इनमें चमर, घंटा, किंकणी, रत्नहार और ध्वजायें सुशोभित रहती हैं। इनके शिखर पर प्रत्येक दिशा में आठ प्रातिहार्यों से युक्त रमणीय एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमायें होती हैं। दूर से ही मानस्तम्भों के देखने से मान से युक्त मिथ्यादृष्टि लोग अभिमान से रहित हो जाते हैं, इसीलिये इनका 'मानस्तम्भ' यह नाम सार्थक है।

सभी समवसरण में तीनों कोटों के बाहर चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में क्रम से पूर्वादि वीथी (गली) के आश्रित वापिकायें होती हैं। पूर्व दिशा के मानस्तम्भ के पूर्वादि भागों में क्रम से नंदोत्तरा, नंदा, नंदवती और नंदिघोषा नामक चार वापिकायें होती हैं। दक्षिण मानस्तम्भ के आश्रित पूर्वादि भागों में विजया, वैजयंता, जयन्ता और अपराजिता नामक चार वापिकायें होती हैं। पश्चिम मानस्तम्भ के आश्रित पूर्वादि भागों में क्रम से अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीका ये चार वापिकायें होती हैं। उत्तर मानस्तम्भ के आश्रित पूर्वादि भागों में क्रम से हृदयानन्दा, महानन्दा, सुप्रतिबुद्धा और प्रभंकरा ये चार वापिकायें होती हैं। ये वापिकायें समचतुष्कोण, कमलादि से संयुक्त, टंकोत्कीर्ण, वेदिका, चार तोरण एवं रत्नमालाओं से रमणीय होती हैं। सब वापिकाओं के चारों तटों में से प्रत्येक तट पर जलक्रीड़ा के योग्य दिव्य द्रव्यों से परिपूर्ण मणिमयी सीढ़ियाँ होती हैं। इन वापिकाओं में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देव तथा मनुष्य क्रीड़ा किया करते हैं। प्रत्येक वापिकाओं के आश्रित, निर्मल जल से परिपूर्ण दो-दो कुण्ड होते हैं, जिनमें देव, मनुष्य और तिर्यंच अपने पैरों की धूलि धोया करते हैं।

९. *प्रथम वेदी* - इस समवसरण में उत्तम रत्नमय ध्वजा, तोरण और घंटाओं से युक्त प्रथम वेदिका होती है। इसमें गोपुर द्वार, पुत्तलिका, १०८ मंगलद्रव्य एवं नव निधियाँ पूर्व के समान ही होती हैं। इन वेदियों के मूल और उपरिम भाग का विस्तार धूलिशाल कोट के मूलविस्तार के समान होता है।

१०. *खातिका* - इसके आगे स्वच्छ जल से परिपूर्ण और अपने जिनेन्द्रदेव की ऊँचाई के चतुर्थभाग प्रमाण खातिका (खाई) होती है। इस खातिका में खिले हुये कुमुद, कुवलय और कमल अपनी सुगन्धि फैलाते रहते हैं, इनमें मणिमय सीढ़ियाँ बनी रहती हैं एवं हंस, सारस आदि पक्षी सदा क्रीड़ा किया करते हैं।

११. *द्वितीय वेदी* - यह वेदिका भी अपनी पूर्व वेदी के सदृश है। इसका विस्तार प्रथम वेदिका से दूना माना गया है।

१२. *लताभूमि* - इसके आगे पुन्नाग, नाग, कुब्जक, शतपत्र और अतिमुक्त आदि से संयुक्त, क्रीड़ा पर्वतों से सुशोभित, फूले हुये कमलों से सहित जल भरी बावड़ियों से मनोहर ऐसी लताभूमि शोभायमान होती है।

१३. *साल* - इसके आगे दूसरा कोट है इसे ही साल कहते हैं। इसका सारा वर्णन धूलिसाल कोट के समान है। अन्तर इतना ही है कि यह विस्तार में उससे दूना रहता है, रजतमयी है एवं यक्ष जाति के देव इसके चारों द्वारों पर खड़े रहते हैं।

१४. *उपवन भूमि* - द्वितीय कोट के आगे चौथी उपवन भूमि होती है। इसमें पूर्वादि दिशाओं के क्रम से अशोकवन, सप्तपर्णवन, चम्पकवन और आम्रवन, ये चार वन शोभायमान होते हैं। यह भूमि विविध प्रकार के वन समूहों से मण्डित, विविध नदियों के पुलिन और क्रीड़ा पर्वतों से तथा अनेक प्रकार की उत्तम वापिकाओं से रमणीय होती है। इस भूमि में अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र ये चार सुन्दर वृक्ष होते हैं इन्हें चैत्यवृक्ष कहते हैं। इनकी ऊँचाई अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारहगुणी रहती है। एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित आठ प्रातिहार्यों से संयुक्त चार-चार मणिमय जिनप्रतिमायें होती हैं। इस उपवन भूमि की बावड़ियों के जल में निरीक्षण करने पर प्रत्येक जन अपने अतीत-अनागत सात भवों को देख लेते हैं।

एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित व तीन कटनियों



के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं। इन मानस्तम्भों के चारों तरफ भी कमल आदि फूलों से युक्त स्वच्छ जल से भरित वापियाँ होती हैं। वहाँ कहीं पर रमणीय भवन, कहीं क्रीड़नशाला और कहीं नृत्य करती हुई देवांगनाओं से युक्त नाट्यशालायें होती हैं। ये रमणीय भवन पंक्तिक्रम से इस भूमि में शोभायमान होते हैं। ये भवन भी कई खनों से निर्मित अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारहगुणे ऊँचे होते हैं। अपनी प्रथम भूमि की अपेक्षा इस उपवन भूमि का विस्तार दूना होता है।

१५. *नृत्यशाला* - सब वनों के आश्रित सब वीथियों (गलियों) के दोनों पार्श्व भागों में दो-दो नाट्यशालायें होती हैं। इनमें से आदि की आठ नाट्यशालाओं में भवनवासिनी देवांगनायें और इससे आगे की आठ नाट्यशालाओं में कल्पवासिनी देवांगनायें नृत्य किया करती हैं। इन नाट्यशालाओं का सुन्दर वर्णन पूर्व के समान है।

१६. *तृतीय वेदी* - यह तीसरी वेदिका अपनी दूसरी वेदिका के समान है, अन्तर इतना ही है कि यहाँ के चारों द्वारों के रक्षक यक्षेन्द्र रहते हैं।

१७. ध्वजाभूमि - वेदिका के आगे इस पंचम ध्वजाभूमि में दिव्य ध्वजायें होती हैं। जिनमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र ये दश प्रकार के चिन्ह बने रहते हैं। चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में इन दश प्रकार की ध्वजाओं में से प्रत्येक १०८ रहती हैं और इनमें से भी प्रत्येक ध्वजा अपनी १०८ क्षुद्रध्वजाओं से संयुक्त रहती हैं। इस प्रकार इस ध्वजाभूमि में महाध्वजा १० X १०८ X ४ = ४३२० व क्षुद्रध्वजायें १० X १०८ X १०८ X ४ = ४६६५६० समस्त ध्वजायें ४३२० + ४६६५६०= ४७०८८० होती हैं। ये समस्त ध्वजायें रत्नों से खचित सुवर्णमय स्तम्भों में लगी रहती हैं। इन ध्वजस्तम्भों की ऊँचाई अपने तीर्थंकर की ऊँचाई से बारहगुणी रहती है।

१८. *साल* - इस ध्वजभूमि के आगे चाँदी के समान वर्णवाला तीसरा कोट अपने धूलिसाल कोट के ही सदृश है। इस कोट का विस्तार द्वितीय कोट की अपेक्षा दूना है और इसके द्वार रक्षक भवनवासी देव रहते हैं।

१९. *कल्पभूमि* - इस छठी भूमि का नाम कल्पभूमि है, यह दश प्रकार के कल्पवृक्षों से परिपूर्ण है। पानांग, तुर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग,

आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग, ये दशप्रकार के कल्पवृक्ष हैं। इस भूमि में कहीं पर कमल, उत्पल से सुगंधित बावड़ियाँ हैं, कहीं पर रमणीय प्रासाद, कहीं पर क्रीड़नशालायें और कहीं पर जिनेन्द्रदेव के विजयचरित्र के गीतों से युक्त प्रेक्षणशालायें होती हैं। ये सब भवन बहुत भूमियों (खनों) से सुशोभित, रत्नों से निर्मित पंक्तिक्रम से शोभायमान होते हैं। इस कल्पभूमि के भीतर पूर्वादि दिशाओं में नमेरू, मंदार, संतानक और पारिजात ये चार-चार महान् सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं। ये वृक्ष तीन कोटों से युक्त और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित होते हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूलभाग में विचित्र पीठों से युक्त, रत्नमय चार-चार सिद्धों की प्रतिमायें होती हैं। ये वंदना करने मात्र से तुरंत संसार के भय को नष्ट कर देती हैं। एक-एक सिद्धार्थ वृक्ष के आश्रित, तीन कोटों से वेष्टित, पीठत्रय के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं। कल्पभूमि में स्थित सिद्धार्थ वृक्ष, क्रीड़नशालायें और प्रासाद जिनेन्द्र की ऊँचाई से बारहगुणे ऊँचे होते हैं।

*२०. नाट्यशाला* - इस कल्पभूमि के पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथी (गली) के आश्रित, दिव्य रत्नों से निर्मित और अपने चैत्यवृक्षों के सदृश ऊँचाई वाली चार-चार नाट्यशालायें होती हैं। सब नाट्यशालायें पांच भूमियों (खनों) से विभूषित, बत्तीस रंगभूमियों से सहित और नृत्य करती हुई ज्योतिषी देवांगनाओं से रमणीय होती हैं।

*२१. वेदी* - इस नाट्यशाला के आगे प्रथम वेदी के सदृश ही चौथी वेदी होती है। यहाँ भवनवासी देव द्वारों की रक्षा करते हैं।

*२२. भवनभूमि* - इस वेदी के आगे भवनभूमि नाम से सातवीं भूमि होती है। इसमें रत्नों से खचित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से सहित और उत्तम तोरण युक्त उन्नत द्वारों वाले भवन होते हैं। वे एक-एक भवन सुरयुगलों के गीत, नृत्य एवं बाजे के शब्दों से तथा जिनाभिषेकों से शोभायमान होते हैं। यहाँ पर भी उपवन, वापिका आदि की सुन्दर शोभा पूर्व के समान रहती है।

*२३. स्तूप* - इस भवनभूमि के पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथी के मध्य जिन और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से व्याप्त नौ-नौ स्तूप होते हैं। इन स्तूपों की छतों पर छत्र फिरते रहते हैं, ध्वजायें फहराती रहती हैं, ये दिव्यरत्नों से निर्मित रहते हैं और आठ मंगल द्रव्यों से सहित होते हैं। एक-एक स्तूप के



बीच में मकर के आकार के सौ तोरण होते हैं। इन स्तूपों की ऊँचाई अपने चैत्यवृक्षों की ऊँचाई के समान होती है। भव्यजीव इन स्तूपों का अभिषेक, पूजन और प्रदक्षिणा किया करते हैं।

*२४. साल* - स्तूपों के आगे आकाश स्फटिक के सदृश और मरकत मणिमय चार गोपुर द्वारों से रमणीय चौथा कोट होता है। यहाँ के द्वारों पर कल्पवासी देव उत्तम रत्नमय दण्डों को हाथ में लेकर खड़े रहते हैं। ये जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की परम भक्ति से द्वारपाल का कार्य करते हैं।

*२५. श्रीमण्डप भूमि* - इस आठवीं भूमि का नाम 'श्रीमण्डप' है। यह अनुपम उत्तमरत्नों के खम्भों पर स्थित और मुक्ताजालादि से शोभायमान रहती है। इसमें निर्मल स्फटिकमणि से निर्मित सोलह दीवालों के बीच में बारह कोठे होते हैं। इन कोठों की ऊँचाई अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई से बारहगुणी होती है।

*२६. गणविन्यास* - इन बारह कोठों के भीतर पूर्वादि प्रदक्षिणा क्रम से पृथक्-पृथक् ऋषि आदि बारहगण बैठते हैं। उनका क्रम यह है — प्रथम कोठे में संपूर्ण ऋद्धियों के धारक गणधरदेव और सर्वदिगंबर मुनिगण बैठते हैं। स्फटिकमणि की दीवाल से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे कोठे में अतिशय नम्र आर्यिकायें तथा श्राविकायें बैठती हैं। चतुर्थ कोठे में ज्योतिर्वासी देवियाँ, पांचवें में व्यंतर देवियाँ, छठे में भवनवासी देवियाँ, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यंतरदेव, नौवें में सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिषीदेव, दशवें में कल्पवासीदेवी, ग्यारहवें में चक्रवर्ती, मण्डलीक राजा एवं अन्य मनुष्य तथा बारहवें में परस्पर वैरभाव को छोड़कर सिंह, व्याघ्र, नकुल, हरिण आदि तिर्यंचगण बैठते हैं।

*२७. वेदी* - इसके अनंतर निर्मल स्फटिक पाषाण से बनी हुई पाँचवीं वेदिका होती है। जिसका सर्व वर्णन प्रथम वेदी के सदृश ही है।

*२८. प्रथम पीठ* - इस पाँचवी वेदी के आगे वैडूर्यमणि से निर्मित प्रथम पीठ होती है। इन पीठों की ऊँचाई भी अपने मानस्तम्भ की पीठ के सदृश है। इस प्रथमपीठ के ऊपर बारह कोठों में से प्रत्येक कोठे के प्रवेश द्वारों में और समस्त (चार) वीथियों के सन्मुख सोलह-सोलह सीढ़ियाँ होती हैं। चूड़ी के सदृश गोल नाना प्रकार के पूजा द्रव्य और मंगल द्रव्यों से सहित इस पीठ

पर चारों दिशाओं में अपने शिर पर धर्मचक्र को रखे हुये यक्षेंद्र स्थित रहते हैं। वे गणधर देव आदि बारहगण इस पीठ (कटनी) पर चढ़कर और प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्रदेव के सम्मुख हुये यथा योग्य वंदना, पूजा, भक्ति आदि करते हैं। सैकड़ों स्तुतियों द्वारा गुणकीर्तन करके असंख्यात गुणश्रेणीरूप से अपने कर्मों की निर्जरा करते हुये प्रसन्नचित्त होकर अपने-अपने कोठों में प्रवेश करते हैं।

*२९. द्वितीय पीठ* - प्रथम पीठ (कटनी) के ऊपर दूसरा पीठ होता है। यह पीठ भी नाना रत्नों से खचित भूमि युक्त होता है। इस सुवर्णमय पीठ पर चढ़ने के लिये चारों दिशाओं में पांच वर्ण के रत्नों से निर्मित सीढ़ियाँ होती हैं। इस पीठ के ऊपर मणिमय स्तम्भों पर लटकती हुई ध्वजायें होती हैं, जिनमें सिंह, बैल, कमल, चक्र, माला, गरुड़, वस्त्र और हाथी ऐसे आठ प्रकार के चिन्ह बने रहते हैं। इसी पीठ पर धूपघट, मंगलद्रव्य, पूजनद्रव्य और नवनिधियाँ रहती हैं जिनका वर्णन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है।

*३०. तृतीय पीठ* - द्वितीय पीठ के ऊपर विविध प्रकार के रत्नों से खचित तीसरा पीठ (कटनी) होता है। सूर्यमण्डल के समान गोल इस पीठ के चारों ओर रत्नमय और सुखकर स्पर्शवाली आठ-आठ सीढ़ियाँ होती हैं।

*३१. गंधकुटी* - इस तृतीय पीठ के ऊपर एक गंधकुटी होती है। यह चामर, किंकणी, वन्दनमाला और हार आदि से रमणीय, गोशीर, मलय, चंदन, कालागरु आदि धूपों के गंध से व्याप्त, प्रज्वलित रत्नों के दीपकों से सहित तथा फहराती हुई विचित्र ध्वज पंक्तियों से संयुक्त होती है। ऋषभदेव के समय गंधकुटी की ऊँचाई ६०० धनुष थी। आगे घटते-घटते वीरनाथ के समय ७५ धनुष प्रमाण रह गई थी। गंधकुटी के मध्य में पादपीठ सहित, उत्तम स्फटिक मणि से निर्मित, घंटाओं के समूहादि से रमणीय सिंहासन होता है। रत्नों से खचित उस सिंहासन की ऊँचाई तीर्थंकर की ऊँचाई के ही योग्य हुआ करती है।

इस प्रकार यहाँ ३१ अधिकारों द्वारा समवसरण का वर्णन किया गया है। लोक और अलोक को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के समान भगवान् अर्हंतदेव उस सिंहासन के ऊपर आकाश मार्ग में चार अंगुल के अन्तराल से स्थित रहते हैं।



अतिसंक्षेप में पुनः इस समवसरण को बताते हैं —

## *समवसरण में आठ भूमि और तीन कटनी*

*१. पहली* — 'चैत्यप्रासाद भूमि' है, इसमें एक-एक जिन मंदिर के अंतराल में पाँच-पाँच प्रासाद हैं।

*२. दूसरी* —खातिका भूमि है, इसके स्वच्छ जल में हंस आदि कलरव कर रहे हैं और कमल आदि पुष्प खिले हुये हैं।

*३. तीसरी* —लताभूमि है, इसमें छहों ऋतुओं के पुष्प खिले हुये हैं।

*४. चौथी* —उपवनभूमि है, इसमें पूर्व आदि दिशा में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वन हैं। प्रत्येक वन में एक-एक चैत्यवृक्ष हैं जिनमें ४-४ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।

*५. पाँचवी* —ध्वजाभूमि है, इसमें सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र इन दशचिन्हों से सहित महाध्वजायें और उनके आश्रित लघु ध्वजायें सब मिलाकर ४,७०,८८० हैं।

*६. छठी* —कल्पभूमि है, इसमें भूषणांग आदि दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं। चारों दिशा में क्रम से नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात ऐसे एक-एक सिद्धार्थवृक्ष हैं। इनमें चार-चार सिद्धप्रतिमायें विराजमान हैं।

*७. सातवीं* —भवनभूमि में भवन बने हुये हैं। इस भूमि के पार्श्व भागों में अर्हंत और सिद्ध प्रतिमाओं से सहित नौ-नौ स्तूप हैं।

*८. आठवीं* —श्रीमण्डपभूमि है, इसमें १६ दीवालों के बीच में १२ कोठे हैं जिनमें १- गणधरादि मुनि २-कल्पवासिनी देवी ३-आर्यिका और श्राविका ४-ज्योतिषी देवी ५-व्यंतर देवी ६-भवनवासिनी देवी ७-भवनवासी देव ८-व्यंतर देव ९-ज्योतिष देव १०-कल्पवासी देव ११-चक्रवर्ती आदि मनुष्य और १२-सिंहादि तिर्यंच, ऐसे बारह गण के असंख्यातों भव्यजीव बैठकर धर्मोपदेश सुनते हैं। वहां पर रोग, शोक, जन्म, मरण, उपद्रव आदि बाधायें नहीं हैं।

पुनः प्रथम कटनी पर आठ महाध्वजायें, आठ मंगलद्रव्य आदि हैं। तृतीय कटनी पर गंधकुटी में सिंहासन पर लाल कमल की कर्णिका पर भगवान महावीर चार अंगुल अधर विराजमान हैं। इनका मुख एक तरफ

होते हुये भी चारों तरफ दिखने से ये चतुर्मुख ब्रह्मा कहलाते हैं। भगवान के पास अशोक वृक्ष, तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल, चौंसठ चंवर, सुरपुष्पवृष्टि, दुंदभि बाजे और हाथ जोड़े सभासद ये आठ महाप्रातिहार्य होते हैं। वहीं पर भगवान महावीर के जिनशासन देव मातंगयक्ष और शासनदेवी सिद्धायिनी यक्षी विद्यमान हैं।

## *चौंतीस अतिशय*

तीर्थंकर के जन्म से लेकर अन्त तक ३४ अतिशय होते हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार है—

जन्म के १० अतिशय, घातिकर्म क्षय से ११ अतिशय और देवों के द्वारा किये गये १३ अतिशय, ऐसे कुल मिलाकर ३४ अतिशय[1] होते हैं।

पसीना का न होना, शरीर में मल-मूत्र का न होना, दूध के समान सफेद रुधिर का होना, वज्रवृषभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान, अत्यन्त सुन्दर शरीर, नवचंपक की उत्तम गंध के समान सुगन्धित शरीर, १००८ उत्तम लक्षणों का होना, अनंत बल-वीर्य, हित-मित एवं मधुर भाषण, प्रत्येक तीर्थंकर के जन्मकाल से ही ये स्वाभाविक दश अतिशय होते हैं।

अपने पास से चारों दिशाओं में १०० योजन तक सुभिक्षता, आकाश में गमन, हिंसा का अभाव, भोजन का अभाव, उपसर्ग का अभाव, सबकी ओर मुख करके स्थित होना, छाया का न होना, पलकों का न झपकना, सर्व विद्याओं की ईश्वरता, नख और केशों का न बढ़ना, अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्र भाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षर-अनक्षरात्मक भाषायें हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक साथ भव्यजनों को दिव्य उपदेश देना। भगवान जिनेन्द्रदेव की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्यध्वनि तीनों संध्या कालों में नव मुहूर्तों तक निकलती है और एक योजन पर्यंत जाती है। इससे अतिरिक्त गणधर देव, इन्द्र अथवा चक्रवर्ती मुख्यश्रोता के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। यह दिव्यध्वनि भव्यजीवों को छह द्रव्य, नव

१. यह गणना तिलोयपण्णत्ति के आधार से है। अन्य ग्रन्थों में जन्म के १०, केवलज्ञान के १० और देवकृत १४ ऐसे ३४ अतिशय गिनाये हैं।



पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है। इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुये ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकर को केवलज्ञान के होने पर प्रगट होते हैं।

तीर्थंकर के माहात्म्य से संख्यात योजनों तक वन असमय में ही पत्ते, फूल और फलों की समृद्धि से युक्त हो जाता है। कंटक और रेती को दूर करती हुई सुखदायक वायु चलने लगती है। जीव पूर्व वर को छोड़कर मैत्रीभाव से रहने लगते हैं। उतनी भूमि दर्पण तल के सदृश स्वच्छ और रत्नमय हो जाती है। सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगंधित जल की वर्षा करता है। देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि खेत को रचते हैं। सब जीवों को नित्य आनंद उत्पन्न होता है। वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है। कुँये और तालाब आदि निर्मल जल से पूर्ण हो जाते हैं। आकाश धुआँ और उल्कापात आदि से रहित होकर निर्मल हो जाता है। संपूर्ण जीवों को रोगादि की बाधायें नहीं होती हैं। यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे दिव्य धर्मचक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है। तीर्थंकर की (विदिशाओं सहित) चारों दिशाओं में छप्पन सुवर्ण कमल, एक पाद पीठ और दिव्य एवं विविध प्रकार के पूजनद्रव्य होते हैं। इस प्रकार ये चौंतीस अतिशय कहे गये हैं।

*आठ महाप्रातिहार्य*—ऋषभ आदि तीर्थंकरों को जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक वृक्ष कहलाते हैं। ये जिनेन्द्रदेव के शरीर की ऊँचाई से बारह गुणे अधिक ऊँचे होते हैं। ये इतने सुन्दर होते हैं कि इनको देखकर इन्द्र का चित्त भी अपने नन्दन वनों में नहीं रमता है। तीर्थंकर के मस्तक के ऊपर बिना स्पर्श किये ही चंद्रमण्डल के सदृश, मुक्ता के समूह से युक्त तीन छत्र शोभित होते हैं। निर्मल स्फटिक पाषाण से निर्मित और उत्कृष्ट रत्नों से खचित सिंहासन होता है। गाढ़ भक्ति में आसक्त, हाथों को जोड़े हुये, विकसित मुख कमल से संयुक्त, बारह गण के मुनिगण आदि भव्य जीव भगवान को घेरकर स्थित रहते हैं। मोह से रहित होकर जिनप्रभु के शरण में आवो, आवो, ऐसा कहते हुये ही मानों देवों का दुंदुभी बाजा बजता रहता है। भगवान् के चरणों के मूल में देवों के द्वारा की गई पुष्पवृष्टि होती रहती है। करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान प्रभामण्डल अपने दर्शनमात्र

से ही सम्पूर्ण लोगों को सात भवों को दिखला देता है। कुंदपुष्प के समान श्वेत चौंसठ चंवर देवों के द्वारा ढुराये जाते हैं। ये आठ महाप्रातिहार्य कहलाते हैं।

इन चौंतीस अतिशय और आठ महाप्रातिहार्य से संयुक्त मोक्षमार्ग के नेता और तीनों लोकों के स्वामी ऐसे अर्हंतदेव की मैं वंदना करता हूँ।

समवसरण में कितने जीव रहते हैं ? — प्रत्येक समवसरण में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् असंख्यात जीव जिनेन्द्रदेव की वंदना में प्रवृत्त हुये स्थित रहते हैं। कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है, फिर भी वे सब भव्यजीव जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं। वहाँ पर बालक से लेकर वृद्ध तक सभी लोग प्रवेश करने में अथवा निकलने में अंतर्मुहूर्त काल (४८ मिनट) के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं। इन कोठों में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते, तथा अनध्यवसाय, संदेह और विपरीतता से युक्त जीव भी नहीं होते हैं। इससे अतिरिक्त वहाँ पर जिन भगवान् के माहात्म्य से आतंक, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, क्रम बाधा तथा भूख और प्यास की बाधायें भी नहीं होती हैं।

*यक्ष-यक्षिणी* —गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरू, कुसुम वरनन्दि, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महेन्द्र, कुबेर, वरुण, विद्युत्प्रभ, सर्वाण्ह, धरणेन्द्र और मातंग चौबीस तीर्थंकरों के ये चौबीस यक्ष हैं। अपने-अपने तीर्थंकर के ये यक्ष अपने-अपने जिनेंद्रदेव के पास में स्थित रहते हैं। इन्हें जिनशासन देव कहते हैं।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, मानवी, गौरी, गांधारी, वैरोटी, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, चामुण्डी, कूष्माण्डी, पद्मावती और सिद्धायिनी चौबीस तीर्थंकरों के क्रम से ये चौबीस यक्षिणी हैं। अपने-अपने तीर्थंकर के समीप में एक-एक यक्षिणी रहा करती हैं। इन्हें जिनशासनदेवी कहते हैं।

*दिव्यध्वनि का माहात्म्य* — जैसे चन्द्रमा से अमृत झरता है उसी प्रकार खिरती हुई जिन भगवान् की वाणी को अपने कर्त्तव्य के बारे में सुनकर वे बारह गणों के भिन्न-भिन्न जीव नित्य ही अनन्तगुणश्रेणीरूप से विशुद्ध परिणामों को धारण करते हुये अपने असंख्यात-गुणश्रेणीरूप कर्मों को नष्ट कर देते हैं। वहाँ



पर रहते हुये वे भव्य जीव जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों में परम आस्थावान होते हुये परम भक्ति में आसक्त होकर अतीत, वर्तमान और भावीकाल को भी नहीं जानते हैं अर्थात् बहुत सा काल व्यतीत कर देते हैं। इस प्रकार से तीर्थंकर को जब आर्हंत्य पद नामक परमस्थान प्राप्त होता है तब समवसरण की विभूति आदि महा अतिशय प्रगट होते हैं।

आर्हंत्य परमस्थान में यह समवसरण आदि विभूति तो बहिरंग वैभव है। इसके साथ चार घातिया कर्मों के नाश होने से चार अनंत गुण प्रगट हो जाते हैं। ज्ञानावरण कर्म के अभाव से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण के नाश से अनन्तदर्शन, मोहनीय के नाश से अनन्तसुख और अन्तराय के क्षय से अनन्तवीर्य प्रगट हो जाते हैं। ये चार गुण ही अनन्तचतुष्टय कहे जाते हैं।

भगवान् की सभा में द्वादशांग श्रुत के ज्ञाता, मनःपर्ययज्ञान पर्यंत चार ज्ञान के धारी और चौंसठ ऋद्धियों से समन्वित गणधर देव रहते हैं जो भगवान् की दिव्यध्वनि को श्रवण कर जन-जन में उसका विस्तार करते हैं। गणधर के अभाव में तीर्थंकर की दिव्यदेशना नहीं होती है ऐसा नियम है। भगवान की बारह सभा में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, यह चतुर्विध संघ रहता है। असंख्यातों देव-देवियाँ रहते हैं और संख्यातों तिर्यंच रहते हैं। ये सभी भगवान् के दिव्य उपदेश को सुनकर सम्यक्त्व को और अपने योग्य व्रतों को ग्रहण कर अपनी आत्मा को मोक्षमार्गी बना लेते हैं।

## *विपुलाचल पर्वत पर प्रथम दिव्यध्वनि खिरी*

भगवान महावीर का समवसरण बन गया था किन्तु भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी। जब प्रभु का श्रीविहार होता था तब समवसरण विघटित हो जाता था एवं प्रभु का श्रीविहार आकाश में अधर होता था। देवगण भगवान के श्रीचरण कमलों के नीचे-नीचे स्वर्णमयी सुगंधित दिव्य कमलों की रचना करते रहते थे पुनः जहाँ भगवान रुकते, अर्धनिमिष मात्र में कुबेर आकाश में अधर ही समवसरण बना देता था।

हरिवंश पुराण में आया है कि छ्यासठ दिन तक मौन से विहार करते हुये प्रभु राजगृह में पहुँचे-

षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः।
आजगाम जगत्ख्यातं जिनो राजगृहं पुरम्।।६१।।
आरूरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियं।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा।।६२।।
इन्द्राग्निवायुभूताख्याः कौण्डिन्याख्याश्च पण्डिताः।
इन्द्रनोदनयाऽऽयाताः समवस्थानमर्हतः।।६८।।
प्रत्येकं सहिताः सर्वे शिष्याणां पंचभिः शतैः।
त्यक्ताम्बरादिसंबंधाः संयमं प्रतिपेदिरे।।६९।।
सुता चेटकराजस्य कुमारी चंदना तदा।
धौतैकाम्बरसंवीता जातार्याणा पुरःसरी।।७०।।
श्रेणिकोऽपि च संप्राप्तः सेनया चतुरंगया।
सिंहासनोपविष्टं तं प्रणनाम जिनेश्वरम्।।७१।।
प्रत्यक्षीकृतविश्वार्थं कृतदोषत्रयक्षयम्।
जिनेंद्रं गौतमोऽपृच्छत् तीर्थार्थं पापनाशनम्।।८९।।
स दिव्यध्वनिना विश्वसंशयच्छेदिना जिनः।
दुन्दुभिध्वनिधीरेण योजनान्तरयायिना।।९०।।
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः।
प्रतिपद्यह्नि पूर्वाण्हे शासनार्थमुदाहरत्।।९१।।[1]

तदनन्तर छ्यासठ दिन तक मौन से विहार करते हुय श्रीवर्धमान जिनेन्द्र जगत्प्रसिद्ध राजगृह नगर आये। वहाँ जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर आरूढ़ होता है उसी प्रकार वे लोगों को प्रतिबद्ध करने के लिये विपुल लक्ष्मी के धारक विपुलाचल पर्वत पर आरूढ़ हुये।।६१-६२।।

इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति तथा कौण्डिन्य आदि पण्डित इन्द्र की प्रेरणा से श्रीअर्हंत देव के समवसरण में आये। वे सभी पंडित अपने पाँच-पाँच सौ शिष्यों से सहित थे, इन सभी ने वस्त्रादि का त्याग कर संयम धारण कर लिया। उसी समय राजा चेटक की पुत्री कुमारी 'चन्दना' एक स्वच्छ वस्त्र धारण कर आर्यिकाओं में प्रमुख गणिनी हो गयीं। राजा श्रेणिक भी अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ समवसरण में पहुँचे और वहाँ पर

१. हरिवंश पुराण, सर्ग २



सिंहासन पर विराजमान श्रीवर्द्धमान भगवान को नमस्कार किया।।६८-७१।।

तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले एवं राग-द्वेष और मोह को क्षय करने वाले, पापनाशक श्री जिनेन्द्रदेव से श्री गौतम गणधर ने तीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिये प्रश्न किया।

अनंतर श्रीमहावीर स्वामी ने श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के प्रातःकाल के समय अभिजित् नक्षत्र में समस्त संशयों को छेदने वाले, दुन्दुभि के शब्द के समान गंभीर तथा एक योजन तक फैलने वाली दिव्यध्वनि के द्वारा शासन की परंपरा चलाने के लिये उपदेश दिया।।८०-८१।।

अन्यत्र ग्रन्थों में आया है कि–

जब इंद्रराज ने देखा–भगवान को केवलज्ञान होकर ६५ दिन व्यतीत हो गये, फिर भी प्रभु की दिव्यध्वनि नहीं खिर रही है क्या कारण है? चिंतन कर यह पाया कि गणधर का अभाव होने से ही दिव्यध्वनि नहीं खिरी है। तब सौधर्मेंद्र ने इन्द्रभूति ब्राह्मण को इस योग्य जानकर उस अभिमानी को लेने के लिये युक्ति से वृद्ध का रूप बनाया और वहाँ 'गौतमशाला' में पहुँचे। वहाँ के प्रमुख गुरु 'इंद्रभूति' से बोले–

'मेरे गुरु इस समय ध्यान में लीन होने से मौन हैं अतः मैं आपके पास इस श्लोक का अर्थ समझने आया हूँ।'

गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण ने विद्या से गर्विष्ठ होकर पूछा–

'यदि मैं इसका अर्थ बता दूंगा तो तुम क्या दोगे?'

तब वृद्ध ने कहा–'यदि आप इसका अर्थ कर देंगे, तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊँगा और यदि आप अर्थ न बता सके तो इन सब विद्यार्थियों और अपने दोनों भाइयों के साथ आप मेरे गुरु के शिष्य बन जाना।'

महाअभिमानी इंद्रभूति ने यह शर्त मंजूर कर ली, क्योंकि वह यह समझता था कि मेरे से अधिक विद्वान् इस भूतल पर कोई है ही नहीं। तब वृद्ध ने वह काव्य पढ़ा–

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायम्।।[1]

तब गौतम गोत्र से 'गौतम' नाम से प्रसिद्ध इन्द्रभूति ने कुछ देर

१. गौतम स्वामी चरित ।

सोचकर कहा–'अरे ब्राह्मण! तू अपने गुरु के पास ही चल। वहीं मैं इसका अर्थ बताकर तेरे गुरु के साथ वाद-विवाद करूँगा।'

सौधर्मेंद्र तो यही चाहते थे। तब वेषधारी इंद्रराज गौतम को लेकर भगवान के समवसरण की ओर चल पड़े।

वहाँ मानस्तम्भ को देखते ही गौतम का मान गलित हो गया और उन्हें सम्यक्त्व प्रगट हो गया। समवसरण के सारे वैभव को देखते हुए महान् आश्चर्य को प्राप्त उन्होंने भगवान महावीर स्वामी का दर्शन किया और भक्ति में गद्गद् होकर स्तुति करने लगे–

'जयति भगवान् हेमाम्भोज-प्रचार-विजृंभिता-वमर मुकुटच्छायोद्गीर्ण-प्रभापरिचुम्बितौ।।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो। विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः[1]।।१।।

स्तुति करके विरक्त मना होकर उन इंद्रभूति ने प्रभु के चरण सानिध्य में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। तत्क्षण ही उन्हें मति-श्रुत ज्ञान के साथ ही अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। वे गणधर पद को प्राप्त हो गये तभी भगवान की दिव्यध्वनि खिरी थी।

'कषायपाहुड़' ग्रन्थ में प्रथम दिव्यध्वनि के बारे में प्रश्नोत्तर रूप में बहुत ही सुंदर वर्णन किया है–

जिन्होंने धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करके समस्त प्राणियों को संशयरहित किया है, जो वीर हैं–जिन्होंने विशेषरूप से समस्त पदार्थ समूह को प्रत्यक्ष कर लिया है, जो जिनों में श्रेष्ठ हैं तथा राग, द्वेष और भय से रहित हैं ऐसे भगवान महावीर धर्मतीर्थ के कर्ता हैं।

प्रश्न – भगवान महावीर ने धर्मतीर्थ का उपदेश कहाँ पर दिया?

उत्तर – 'सेणियराए सचेलणे महामंडलीए सयलवसुहामंडलं भुंजति मगहामंडल-तिलओवम..? रायगिहणयर - णेरयि -दिसमहिट्ठिय - विउलगिरिपव्वए सिद्धचारणसेविए बारहगण-परिवेड्ढिएण कहियं।

जब महामण्डलीक श्रेणिक राजा अपनी चेलना रानी के साथ सकल पृथिवी मंडल का उपभोग करता था तब मगधदेश के तिलक के समान राजगृह नगर को नैऋत्य दिशा में स्थित तथा सिद्ध और चारणों द्वारा सेवित विपुलाचल पर्वत के ऊपर बारह गणों — सभाओं से परिवेष्टित

१. चैत्यभक्ति।



भगवान महावीर ने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया।

राजगृह नगर के पास स्थित पंचशैलपुर है–जिसे पंचपहाड़ी कहते हैं। पूर्व दिशा में चौकोर आकार वाला ऋषिगिरि नाम का पर्वत है। दक्षिण दिशा में वैभार पर्वत, नैऋत्य दिशा में विपुलाचल नाम का पर्वत है, ये दोनों त्रिकोण आकार वाले हैं। पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में धनुष के आकार वाला 'छिन्न' नाम का पर्वत है। ऐशान दिशा में गोलाकार पांडु नाम का पर्वत है। ये सब पर्वत कुश के अग्रभागों से ढके हुये हैं।

प्रश्न – किस काल में धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई है?

उत्तर – भरतक्षेत्र संबंधी अवसर्पिणी काल के दुःषमसुषमा नामक चौथे काल में नौ दिन, छह महिना अधिक तेतीस वर्ष अवशिष्ट होने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई है। कहा भी है–

इम्मिस्सेवसप्पिणीए चउत्थकालस्स पच्छिमे भाए। चोत्तीसवासावसेसे किंचि विसेसूणकालम्मि[1]।।

इस अवसर्पिणी काल के दुःषमसुषमा नामक चौथे काल के पिछले भाग में कुछ कम चौंतीस वर्ष बाकी रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई है।

आगे इसी को स्पष्ट करते हैं– चौथे काल में पंद्रह दिन और आठ महीना अधिक पचहत्तर वर्ष बाकी रहने पर आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन बहत्तर वर्ष की आयु लेकर मति-श्रुत- अवधि ज्ञान के धारक भगवान महावीर पुष्पोत्तर विमान से च्युत होकर गर्भ में अवतीर्ण हुये। उन बहत्तर वर्षों में तीस वर्ष कुमार काल है, बारह वर्ष, छद्मस्थ काल है तथा तीस वर्ष केवलीकाल है। इन तीनों कालों का जोड़ बहत्तर वर्ष होता है। इस ७२ वर्ष प्रमाण काल को पंद्रह दिन और आठ महीना अधिक ७५ वर्ष में घटा देने पर वर्द्धमान जिनेंद्र के मोक्ष जाने पर जितना चतुर्थ काल शेष रहता है उसका प्रमाण होता है।

इस काल में छ्यासठ दिन कम केवलिकाल अर्थात् २६ वर्ष, नौ महीना और चौबीस दिन के मिला देने पर चतुर्थकाल में नौ दिन और छह महीना अधिक तैतीस वर्ष बाकी रहते हैं।

शंका– केवलिकाल में से छ्यासठ दिन किसलिये कम किये हैं?

समाधान – भगवान महावीर को केवलज्ञान की उत्पत्ति हो जाने पर

१. कसायपाहुड़ पु.१ पृ. ७६-८१।

भी छ्यासठ दिन तक धर्मतीर्थ की उत्पत्ति नहीं हुई थी, इसलिये केवलिकाल में से छ्यासठ दिन कम किये गये हैं।

जयधवला में कहा है–

"दिव्वज्झुणीए किमट्ठं तत्थापउत्ती?

गणिंदाभावादो।

सोहम्मिंदेण तक्खणे चेव गणिंदो किण्ण ढोइदो?

ण, काललब्धीए विणा असहेज्जस्स देविंदस्स तड्ढोयणसत्तीए अभावादो।"

*शंका* —केवलज्ञान की उत्पत्ति के अनंतर छ्यासठ दिन तक दिव्य-ध्वनि की प्रवृत्ति क्यों नहीं हुई?

*समाधान* —गणधर न होने से उतने दिन तक दिव्यध्वनि की प्रवृत्ति नहीं हुई।

*शंका* —सौधर्मेन्द्र ने केवलज्ञान प्राप्त होते ही गणधर देव को क्यों नहीं उपस्थित किया?

*समाधान* —नहीं, क्योंकि काललब्धि के बिना सौधर्म इन्द्र गणधर को उपस्थित करने में असमर्थ था, उसमें उसी समय गणधर को उपस्थित करने की शक्ति नहीं थी।

*शंका* —जिसने अपने तीर्थंकर पादमूल में महाव्रत स्वीकार किया है ऐसे पुरुष को छोड़कर अन्य के निमित्त से दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरती है?

*समाधान* —ऐसा ही स्वभाव है और स्वभाव दूसरों के द्वारा प्रश्न करने योग्य नहीं होता है, क्योंकि यदि स्वभाव में ही प्रश्न होने लगे तो कोई व्यवस्था ही न बन सकेगी।

अतएव कुछ कम चौतीस वर्ष प्रमाण चौथे काल के रहने पर तीर्थ की उत्पत्ति हुई यह सिद्ध हुआ।

कोई अन्य आचार्य "भगवान वर्द्धमान की आयु ७१ वर्ष, ३ माह २५ दिन प्रमाण है" ऐसा कहते हैं।

आषाढ़ शुक्ला षष्ठी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी तक ६ माह ८ दिन हुये। चैत्र शुक्ला चतुर्दशी से अट्ठाईस वर्ष व्यतीत कर पुनः मगसिर कृष्णा दशमी तक लेने से अट्ठाईस वर्ष सात माह बारह दिन (२८ वर्ष ७ माह १२ दिन) होते हैं। मगसिर कृ.११ से आगे बारह वर्ष के बाद वैशाख शुक्ला दशमी को



केवलज्ञान हुआ अतः १२ वर्ष, ५ माह १५ दिन बाद केवली हुये हैं। वैशाख शुक्ला ११ से आगे वैशाख शुक्ला १० तक उनतीस वर्ष पुनः वैशाख शुक्ला ११ से कार्तिक कृष्णा अमावस्या तक पाँच माह बीस दिन ऐसे २९ वर्ष, ५ माह, २० दिन का केवली काल है। इस प्रकार वर्द्धमान जिनेन्द्र की आयु ७१ वर्ष, ३ माह, २५ दिन प्रमाण मानी गयी है।

भगवान महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की थी। दूसरे मत से इकहत्तर वर्ष, तीन माह, पच्चीस दिन की थी। ये दोनों मत जयधवला ग्रंथ में आये हैं।[1]

श्रावणकृष्णा एकम के दिन भगवान की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी थी जब इंद्रभूति ब्राह्मण ने वर्द्धमान भगवान से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी। उत्तर पुराण में कहा है–

'श्रीवर्द्धमानमानम्य संयमं प्रतिपन्नवान्।'

श्रीवर्द्धमान स्वामी को नमस्कार करके सकलसंयम ग्रहण कर लिया था।

दिव्यध्वनि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में आया है।

जोयणपमाणसंट्ठिद - तिरियामरमणुव णिवहपडिबोधो।
मिदमधुरगभीतरा - विसदविसयसयल भासाहिं।
अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।
अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ।।
एदासिं भासाणं तालुवंदतोट्ठकंठवावारं।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकर-भासो।।[2]

एक योजन प्रमाण तक स्थित तिर्यंच देव और मनुष्यों के समूह को बोध प्रदान करने वाली भगवान की दिव्यध्वनि होती है। यह दिव्यध्वनि मृदु—मधुर, अतिगंभीर और विशद-स्पष्ट विषयों को कहने वाली संपूर्ण भाषामय होती है। यह संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह भाषा और सात सौ लघु भाषाओं में परिणत होती हुई, तालु-ओंठ-दाँत तथा कंठ के हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजीवों को आनंदित करने वाली होती हैं ऐसी दिव्यध्वनि के स्वामी तीर्थंकर भगवान होते हैं।

षट्खंडागम ग्रन्थ में श्रीवीरसेनस्वामी कहते हैं–

१. कसायपाहुड पु. १ पृ. ७६। २. तिलोयपण्णत्ति अध्याय १, गाथा ६०-६१।

''तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम -जणिदचउ- रमलबुद्धिसंपण्णेण बह्मणेण गोदमगोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीवविसयसंदेह -विणासणट्ठ -मुवगयवड्ढमाणपादमूलेण इंदिभूदिणावहारिदो।[१]''

इस प्रकार केवलज्ञानी भगवान महावीर के द्वारा कहे गये पदार्थ को उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न चार प्रकार के -मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययरूप निर्मल ज्ञान से युक्त संपूर्ण दुःश्रुति - अन्यमतावलंबी वेद-वेदांग में पारंगत, गौतमगोत्रीय ऐसे इन्द्रभूति ब्राह्मण ने जीव-अजीव विषयक संदेह को दूर करने के लिये श्रीवर्द्धमान भगवान के चरणकमल का आश्रय लेकर ग्रहण किया अर्थात् प्रभु की दिव्य ध्वनि को सुना।

इसीलिये भगवान महावीर 'अर्थकर्त्ता' कहलाये हैं।

'पुणो तेणिदंभूदिणा भावसुदपज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथणमेक्केण चेवमुहूत्तेण रयणा कदा।[२]''

पुनः उन इन्द्रभूति गौतमस्वामी ने भावश्रुत पर्याय से परिणत होकर बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रन्थों की रचना एक ही मुहूर्त में कर दी।

सारांश यह है कि आज से पच्चीस सौ अट्ठावन वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि खिरी थी यही प्रथम देशना दिवस— 'वीरशासन जयंती' के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने गणधर पद प्राप्त करके द्वादशांगरूप श्रुत की रचना की थी जोकि मौखिक मानी गई उसे लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता है। इन द्वादशांग श्रुत में क्या विषय है उसका नाममात्र वर्णन आगे किया जा रहा है।

## *भगवान महावीर के पूर्व भव*

*पुरुरवा भील* — इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर 'पुष्कलावती' नाम का देश है। उसकी 'पुण्डरीकिणी' नगरी में एक 'मधु' नाम का वन है। उसमें 'पुरुरवा' नाम का एक भीलों का राजा अपनी 'कालिका' नाम की स्त्री के साथ रहता था[१]। किसी दिन दिग्भ्रम के

१. वीर निर्वाण सं. २५२८ से यह संख्या लिखी गई है। २. षट्खंडागम धवलाटीका समन्वित पृ. ६५-६६



कारण 'श्री सागरसेन' नामक मुनिराज को इधर-उधर भ्रमण करते हुये देखकर यह भील उन्हें मारने को उद्यत हुआ उसकी स्त्री ने यह कहकर मना कर दिया कि 'ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो।' वह पुरुरवा उसी समय मुनि को नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शांत हो गया। मुनिराज ने उससे मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग करा दिया। मांसाहारी भील भी इन तीनों के त्यागरूप व्रत को जीवन पर्यन्त पालन कर आयु के अंत में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु को धारण करने वाला देव हो गया। कहाँ तो वह हिंसक क्रूर भील पाप करके नरक चला जाता और कहाँ उसे गुरु का समागम मिला कि जिनसे हिंसा का त्याग करके स्वर्ग चला गया!

*मरीचि कुमार* —जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखंड के मध्य भाग में कौशल नाम का देश है। इस देश के मध्य भाग में अयोध्या नगरी है। वहां ऋषभदेव भगवान के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती की अनंतमती रानी से 'यह पुरुरवा भील का जीव देव' मरीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा भगवान ऋषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरु भक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। भगवानृ तो छह महीने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। मरीचि आदि चार हजार राजा स्वयं ही फल, आवरण आदि को ग्रहण करने लगे तब वनदेवता ने प्रगट होकर कहा- ''निर्ग्रंथ दिंगबर—जिनमुद्रा को धारण करने वालों का यह क्रम नहीं है अर्थात् यह अर्हंतमुद्रा तीनों लोकों में पूज्य है इसको धारण कर यह स्वच्छंद प्रवृत्ति करना कथमपि उचित नहीं है अतः तुम लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अन्य वेष ग्रहण कर लो।''

ऐसा सुनकर प्रबल मिथ्यात्व से प्रेरित हुये मरीचि ने भी सबसे पहले परिव्राजक की दीक्षा धारण कर ली। वास्तव में जिनका संसार दीर्घ होता है उनके लिये यह मिथ्यात्व कर्म मिथ्यामार्ग ही दिखलाता है। उस समय उसे उन सब विषयों का ज्ञान भी स्वयं ही प्रगट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनों के समान दुर्जनों को भी अपने विषय का ज्ञान स्वयं ही हो जाता

१. भगवान ऋषभदेव के जन्म के पूर्व इसी आर्यखंड में भोगभूमि की व्यवस्था थी। उस विदेह क्षेत्र की यह घटना है।

है। उसने तीर्थंकर भगवान के वचन सुनकर भी समीचीन धर्म ग्रहण नहीं किया था। वह मरीचि साधु सोचता रहता था कि जिस प्रकार भगवान ऋषभदेव ने अपने आप समस्त परिग्रहों कर त्याग कर तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न करने वाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसी प्रकार मैं भी संसार में अपने द्वारा चलाये हुये दूसरे मत की व्यवस्था करूंगा और उसके मिमित्त से होने वाले बड़े भारी प्रभाव के कारण इन्द्र की प्रतीक्षा को प्राप्त करूंगा—इन्द्र द्वारा की हुई पूजा को प्राप्त करूंगा। मैं समझता हूं कि मेरे यह सब अवश्य होगा। इस प्रकार मान कर्म के उदय से वह पापबुद्धि सहित हुआ खोटे मत से विरक्त नहीं हुआ और अनेक दोषों से दूषित वही वेष धारण कर रहने लगा।

तभी कच्छ आदि चार हजार राजा जो दीक्षित हुये उन सभी मुनिवेषधारियों ने भी अनेक वेष बना लिये।

*मरीचि का भवभ्रमण*—मरीचिकुमार आयु के अंत में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर आयु वाला देव हो गया। वहाँ से आकर जटिल ब्राह्मण हुआ, पुनः पारिव्राजक बना पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ पुनः वहां से आकर अग्निसह ब्राह्मण होकर पारिव्राजक दीक्षा ले ली पुनः मरकर देव हुआ, वहां से च्युत होकर अग्निमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक तापसी हुआ पुनरपि माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर भारद्वाज ब्राह्मण होकर त्रिदण्डी साधु बन गया और पुनरपि स्वर्ग में गया, वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व के निमित्त से यह मरीचि कुमार त्रस-स्थावार योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता रहा।

वह मरीचि कुमार का जीव इस तरह असंख्यात वर्षों तक इन कुयोनियों में भ्रमण करते हुये श्रांत हो गया। कुछ पुण्य से राजगृह नगर के शांडिल्य ब्राह्मण की पारशरी पत्नी से 'स्थावर' नाम का पुत्र हुआ। वहां भी सम्यग्दर्शन से शून्य पारिव्राजक की दीक्षा लेकर अंत में मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया।

*विश्वनंदी*—इसी मगधदेश के राजगृह नगर में 'विश्वभूति' राजा की 'जैनी' नामकी रानी से यह मरीचि कुमार का जीव स्वर्ग में आकर 'विश्वनंदी' नाम का राजपुत्र हो गया। विश्वभूति राजा का एक विशाखभूति नाम का छोटा भाई था, उसकी लक्ष्मणापत्नी से 'विशाखनन्दि' नाम का मूर्ख



पुत्र हो गया। किसी दिन विश्वभूति राजा ने विरक्त होकर छोटे भाई विशाखभूति को राज्य देकर अपने पुत्र 'विश्वनन्दि' को युवराज बना दिया और स्वयं तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षित हो गये।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज अपने 'मनोहर' नामक उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसे देख, चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता के पास जाकर उस उद्यान की याचना की। विशाखभूति ने भी युवराज विश्वनंदी को 'विरुद्ध राजाओं को जीतने के बहाने' बाहर भेजकर पुत्र को बगीचा दे दिया। विश्वनंदी को इस घटना का तत्काल पता लग जाने से वह क्रुद्ध होकर वापस विशाखनंदी को मारने को उद्यत हुआ। तब विशाखनंदी कैथे के वृक्ष पर चढ़ गया, इसने कैथे के वृक्ष को उखाड़ दिया। तब वह भागा और पत्थर के खम्भे के पीछे हो गया, यह विश्वनंदी पत्थर के खंभे को उखाड़कर उससे उसे मारने को दौड़ा। विशाखनंदी वहां से डर कर भागा तब युवराज के हृदय में सौहार्द और करुणा जाग्रत हो गयी। उसने उसी समय उसे अभयदान देकर बगीचा भी दे दिया और स्वयं 'संभूत' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली, तब विशाखभूति ने भी पापों का पश्चाताप कर दीक्षा ले ली।

किसी दिन मुनि विश्वनंदी अत्यन्त कृश शरीरी मथुरा में आहार के लिए आये, उस समय यह विशाखनंदि वेश्या के महल की छत से मुनि को देख रहा था। मुनि को गाय ने धक्के से गिरा दिया यह देख विशाखनंदि बोला 'तुम्हारा पत्थर का खम्भा तोड़ने वाला पराक्रम कहाँ गया'? मुनि ने यह दुर्वचन सुने उन्हें क्रोध आ गया अन्त में निदान सहित संन्यास से मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये, वहीं पर चाचा विशाखभूति भी देव हो गये। दोनों की आयु सोलह सागर प्रमाण थी।

*अर्धचक्री त्रिपृष्ठकुमार*—सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से 'विशाखभूति का जीव' विजय नाम का पुत्र हुआ और महाराज की दूसरी रानी मृगावती से 'विश्वनंदी का जीव' त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। विजय बलभद्रपद के धारक हुये और ये त्रिपृष्ठ अर्धचक्री पद के धारक हुये। उधर विशाखनंदि का जीव चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हुआ कुछ पुण्य से विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर

में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलांजना रानी से 'अश्वग्रीव' पुत्र हुआ। यह प्रतिनारायण हुआ था। कालांतर में युद्ध में अश्वग्रीव के चक्ररत्न से ही अश्वग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति राजा त्रिपृष्ठ ने अपने भाई विजय के साथ बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया, अन्त में भोगलिप्सा में मरकर सप्तम नरक में चला गया क्योंकि सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतों से रहित राज्य वैभव नरक का ही कारण है।

नरक में इस मरीचि कुमार के जीव ने क्या-क्या कष्ट सहे हैं उनको असंख्य जिह्वाओं से भी नहीं कहा जा सकता? करौंत से चीरना, कुंभी-पाक में पकाना, अग्नि में जलाना, तिल-तिल खंड करना आदि के अनेकों दुख भोगे फिर भी आयु पूर्ण हुये बिना मर नहीं सका। वहाँ पर तेंतीस सागरों की आयु भोगकर सिंह हुआ और गर्मी-सर्दी, भूख, प्यास आदि बाधाओं से दुःखी हुआ, वहाँ पर प्राणी हिंसा से मांसाहार करते हुये पुनः मरकर पहले नरक चला गया। वहाँ के दुःखों को भोगकर वहाँ से निकल कर पुनरपि इसी जम्बूद्वीप में सिंधुकूट की पूर्व दिशा में हिमवान् पर्वत के शिखर पर सुन्दर बालों से युक्त सिंह हुआ।

## *पुण्यशाली मृगेन्द्र*

वह सिंह किसी समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितञ्जय' और 'अमितगुण' नामक दो चारणऋद्धिधारी मुनि आकाशमार्ग से उतरकर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलातल पर बैठकर जोर-जोर से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे भव्य मृगराज! तू अर्धचक्री त्रिपृष्ठ के भव में पांचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन कर तृप्त नहीं हुआ तथा सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण तू नरक में चला गया, वहां अत्यन्त प्रचंड और लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था, इत्यादि दुःखों को भोगकर तू वहां से निकलकर सिंह हुआ पुनः हिंसा के पाप से मरकर नरक गया, वहां से निकलकर पुनः सिंह होकर हिंसा से रत है। तू ऋषभदेव के समय मरीचि के भव में तीर्थंकर वृषभदेव के वचनों का अनादर कर त्रसस्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक भ्रमण करता रहा। अब इस भव से दसवें भव में तू अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर से सुना है। इन सब बातों को सुनते ही सिंह को



जातिस्मरण हो गया। संसार के भयंकर दुःखों की स्मृति से उसका शरीर कांपने लगा तथा आंखों से अश्रु गिरने लगे। बहुत देर तक अश्रु गिरते रहने से ऐसा मालूम होता था कि मानों हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने की इच्छा से मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा है।

उसकी शांत भावना को देखकर मुनि ने उसे सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराये। सिंह ने मुनिराज की भक्ति से बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं, बार-बार प्रणाम किया और तत्काल ही काललब्धि के आ जाने से तत्त्वश्रद्धानपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। सिंह का मांसाहार के सिवाय और कोई आहार नहीं, अतः मांस का त्याग करने से उसने "निराहार व्रत" ग्रहण किया था।

*सम्यग्दर्शन*—सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और तत्वों का श्रद्धान करना।

*अहिंसाणुव्रत*—मनवचनकाय से किसी भी जीव को नहीं मारना।

*सत्याणुव्रत*—स्थूल झूठ नहीं बोलना।

*अचौर्याणुव्रत*—बिना दी हुई पर की वस्तु नहीं लेना।

*ब्रह्मचर्याणुव्रत*—अपनी स्त्री के सिवाय सबको माता, बहन समझना।

*परिग्रह परिमाणाणुव्रत*—धन-धान्य आदि परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रमाण कर लेना।

तिर्यंचों के संयमासंयम के आगे व्रत नहीं हो सकते इसलिए वह देशव्रती कहलाया। वह सिंह सब कुछ त्याग कर शिलातल पर बैठकर चित्रलिखित (पत्थर की मूर्ति) के समान हो गया था। चारण मुनि उसे शिक्षा देकर बार-बार उसका स्पर्श करते हुये चले गये।

महावीर चरित[1] में लिखा है कि—

'यह मरा हुआ है ऐसा समझ मदोन्मत्त हाथियों ने उसकी जटाओं को नष्ट कर दिया, डांस, मक्खी और मच्छरों ने मर्म स्थानों को काट डाला, लोमड़ी और श्रृगाल मृतक समझकर उस सिंह को तीक्ष्ण नखों के द्वारा नोंच-नोंच कर खाने लगे तो भी उस सिंह ने अपनी परम समाधि नहीं छोड़ी, क्षमा भाव से सब सहन करता रहा। पूर्वोक्त प्रकार से एक महीने तक निश्चल रहकर अनशन धारण कर पाप रहित हुआ प्राणों से शरीर को छोड़ा।' इस प्रकार सन्यास विधि से मरा और शीघ्र ही सौधर्म स्वर्ग में

१. अशगकविकृत

सिंहकेतु नाम का देव हो गया वहां दो सागर तक उत्तम सुख भोगे।

*पुनः मरीचि कुमार के जीव की जैनेश्वरी दीक्षा*—स्वर्ग से आकर, धातकीखंड द्वीप के पूर्व मेरु सम्बंधी पूर्व विदेह के मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के 'कनकोज्जवल' नाम का पुत्र हुआ। किसी दिन प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनि से दयामय जैनधर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा ले ली। बहुत काल तक तपश्चरण करते हुये 'कनकोज्जवल' मुनिराज सन्यास विधि से मरकर सातवें स्वर्ग में देव हो गये। वहां के भोगों को भोगकर समाधिपूर्वक प्राण छोड़े और इसी अयोध्या के राजा वज्रसेन की रानी शीलवती 'हरिषेण' पुत्र हो गया। राज्य वैभव का अनुभव करके हरिषेण ने श्रुतसागर मुनि से दीक्षा ले ली। तपश्चरण के प्रभाव से महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये। वहां से चयकर धातकी खंड की पुंडरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र की रानी मनोरमा से 'प्रियमित्र' नाम का पुत्र हो गया। यह प्रियमित्र चक्रवर्तीपद को प्राप्त हुआ, चक्ररत्न से छहखंड को जीतकर बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, छ्यानवे हजार रानियों के वैभव का अनुभव करते हुये क्षेमंकर जिनेन्द्र धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गया। यह प्रियमित्र मुनि आयु के अंत में समाधिकपूव्रक मरण करके सहस्रार स्वर्ग में 'सूर्यप्रभ' नाम के देव हुये। वहां पर अठारह सागर तक दिव्य सुखों का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर के राजा नंदिवर्धन की वीरवती रानी से 'नंद' नाम का एक सज्जन पुत्र हुआ। यहां भी अभिलषित राज्य का उपभोग कर 'प्रोष्ठिल' नाम के श्रेष्ठ गुरु के पास दीक्षा ले ली और ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

## *सिंहकेतु देव*

वह सिंह सल्लेखना विधि से मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया। वहां उसकी आयु दो सागर प्रमाण थी। स्वर्ग में देव उपपादशय्या से सोलह वर्ष के नवयुवक के समान शरीर से परिपूर्ण होकर उठकर बैठ जाते हैं। तभी वहां वाद्यों की ध्वनि आदि से अन्य परिवार



देवगण-देवांगना आदि आकर जय-जयकार करते हुये नव आगत देव का स्वागत करते हैं।

वहां देव जन्म लेकर तत्क्षण सोचते हैं कि मैं यहाँ कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ ? इत्यादि सोचते ही उन्हें भवप्रत्यय नाम के अवधिज्ञान से सभी जानकारी मिल जाती है। इन सिंहकेतु देव ने भी जान लिया कि मैं सिंह की पर्याय में दिगंबर महामुनि के संबोधन से सम्यक्त्व और अणुव्रतों को प्राप्त कर समाधिपूर्वक मरण करके यहां प्रथम स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हुआ हूँ। अनंतर अपने परिवार देवों का अवलोकन करके वस्त्राभरणों से अलंकृत हो अपने जिनमंदिर में गया, विधिवत् अभिषेक पूजन किया। कभी-कभी देव-देवांगनाओं के साथ सभा में नानाप्रकार की चर्चा किया करता था।

कभी-कभी वह देव अपने देव परिवार एवं देवांगनाओं के साथ मध्यलोक में आकर अनेक तीर्थों की वंदना किया करता था। कभी वह सिंहकेतु देव पंचमेरुओं की वंदना करके नंदीश्वर द्वीप में पहुंचकर बावन जिनमंदिरों की वंदना करने पहुंच जाता था।

*नंदीश्वर द्वीप*—मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है एवं आठवें द्वीप का नाम नंदीश्वर द्वीप है। वहां चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि पर्वत हैं। इस अंजनगिरि के चारों तरफ एक-एक विशाल बावड़ियां हैं ये बावड़ियां चौकोन हैं। इन प्रत्येक बावड़ियों के मध्य एक-एक 'दधिमुख' पर्वत हैं। इस प्रकार चार अंजनगिरि संबंधी चार-चार दधिमुख पर्वत होने से सोलह दधिमुख माने हैं।

इन बावड़ियों के बाहिरी कोनों पर दो-दो रतिकर पर्वत हैं ऐसे ये रतिकर बत्तीस हो गये हैं।

इस प्रकार चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख एवं बत्तीस रतिकर ऐसे ४+१६+३२=५२ बावन पर्वतों पर एक-एक जिनमंदिर बने हुये हैं। ये अकृत्रिम जिनमंदिर हैं।

वह सिंहकेतु देव इन मंदिरों की वंदना किया करता था। इस प्रकार दो सागर की आयु पूर्ण कर वह देव वहां से च्युत होकर मध्यलोक में आ गया।

## *विद्याधर राजा कनकोज्ज्वल*

तदनंतर वहां से च्युत होकर धातकीखंड द्वीप के पूर्वमेरू से पूर्व की ओर जो विदेहक्षेत्र है उसके मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अत्यंत श्रेष्ठ 'कनकप्रभ' नगर है। वहां के राजा कनकपुंख विद्याधर और उनकी महारानी कनकमाला के कनकोज्ज्वल नाम का पुत्र हुआ। कालांतर में राजा कनकपुंख ने पुत्र को राज्यभार सौंप दिया। एक दिन राजा कनकोज्ज्वल अपनी रानी कनकवती के साथ वंदना करने के लिये मंदरगिरि-सुमेरू पर्वत पर पहुंच गये। वहां भगवंतों की प्रतिमाओं के दर्शन करके महामुनि 'श्रीप्रियमित्र' गुरू के दर्शन किये वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे। उन विद्याधर राजा कनकोज्ज्वल ने भक्तिपूर्वक महामुनि की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया और प्रश्न किया—

हे भगवन्! धर्म का स्वरूप कहिए।

महामुनि ने कहा—

धर्मो दयामयो धर्मं, श्रय धर्मेण नीयसे।
मुक्तिं धर्मेण कर्माणि, छिंधि धर्माय सन्मतिम्।।
देहि नापेहि धर्मात्त्वं, याहि धर्मस्य भृत्यताम्।
धर्मे तिष्ठ चिरं धर्मं, पाहि मामिति चिंतय।।

हे वत्स! धर्म दयामय है, तुम धर्म का आश्रय करो, धर्म के द्वारा ही तुम मोक्ष के निकट पहुंच सकते हो, धर्म के द्वारा तुम कर्मबंधन का छेदन करो, धर्म के लिये सद्बुद्धि दो—लगावो, धर्म से पीछे मत हटो, धर्म की दासता स्वीकार करो, धर्म में स्थिर रहो और हे धर्म! तुम मेरी रक्षा करो। इस प्रकार धर्म का निश्चय करके सातों विभक्तियों के द्वारा धर्म का चिंतन करते रहो। ऐसा करने से तुम कुछ ही समय में—भवों में मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।

राजा कनकोज्ज्वल मुनिराज से धर्मरूपी रसायन का पान कर ऐसे संतुष्ट हुये जैसे कि प्यासा मनुष्य जल पाकर संतुष्ट होता है। राजा ने उसी क्षण भोगों से विरक्त हो वैराग्य भावना का चिंतन किया और समस्त परिग्रह का त्यागकर गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण कर ली।

बहुत दिनों तक अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हुये विहार किया।



कभी वे वनों में आत्मा का ध्यान करते थे, कभी आतापन योग से स्थित हो संसार, शरीर और भोगों की असारता का चिंतन करते हुये चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन करते थे, कभी जिनमंदिरों में जाकर भगवंतों की वंदना करके नाना प्रकार की स्तुति करते हुये महान पुण्य का संचय किया करते थे।

इस प्रकार संयम की साधना करते हुये आयु के अंत में संन्यास विधि से मरण करके संयम के प्रभाव से सातवें स्वर्ग में देव हो गये।

## *सातवें स्वर्ग में देव*

वहां देव उपपादशय्या से उठकर अवधिज्ञान को प्राप्त करके चिंतन करने लगे—

मैंने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर जो संयम धारण किया था उसी के फलस्वरूप यह देवों का वैभव प्राप्त किया है अतः धर्म के फल का चिंतन करते हुये सर्वप्रथम भगवान के मंदिर में जाकर भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा की। अनंतर अपने देवपरिवार के बीच में बैठकर सभासदों में चर्चा करते थे। कभी-कभी अप्सराओं के नृत्य को देखते हुये देवों के सुखों का अनुभव करते थे।

कभी-कभी मध्यलोक में आकर भगवान के समवसरण में पहुंचकर भगवान की स्तुति-वंदना करके कल्पवासी देवों की सभा में बैठ गये। भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर संतुष्ट हुये पुनः अपने पूर्वभवों को तथा अग्रिम भवों को पूछने लगे। भगवान की दिव्यध्वनि से अपने आगे के भवों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुए कि मैं अब सातभवों के बाद नियम से संसार के दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर लूंगा।

कभी-कभी ये देव समवसरण के वैभव को देखकर चिंतन किया करते थे कि सचमुच में एक दिन भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर के रूप में मेरा भी समवसरण देवों द्वारा बनाया जावेगा यह सब पुण्य की ही महिमा है।

कभी-कभी ये देव स्वर्ग में ही अपने नंदनवन में देव-देवांगनाओं के साथ जलक्रीड़ा, गीत, संगीत, नृत्य आदि करते हुये आमोद-प्रमोद में समययापन करते थे।

कभी तत्त्वचर्चा में निमग्न होते थे तो कभी अकृत्रिम चैत्यालयों की

वंदना करते हुये महान पुण्य का संचय करते थे।

पुनः पुनः मध्यलोक में आकर भगवान के समवसरण में नाना प्रकार के प्रश्नों से बारहगणों के भव्यों को भी संतुष्ट कर रहे थे। प्रश्नों के उत्तर में श्रीगणधर देव कहते थे—

भव्यात्माओं! सुनो, यह अहिंसा प्रधान धर्म चार प्रकार का है। जीवदया, रत्नत्रय, वस्तुस्वभाव और दशलक्षणस्वरूप। प्राणीमात्र के प्रति करुणा भावना, संकल्पीहिंसा का त्याग या पूर्णरूपेण त्रस, स्थावरस्वरूप षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग करना 'अहिंसा धर्म- जीवदया धर्म है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय को स्वीकारना रत्नत्रय धर्म है।

जीवका स्वरूप ज्ञानदर्शनमय है, पुद्गल का स्वभाव अचेतन—जड़ है। इत्यादि प्रकार से द्रव्यों के स्वरूप का चिंतन करना। अनेकांत स्वरूप वस्तु का चिंतन करना वस्तु स्वभाव धर्म है।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दशधर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। श्रावक इन धर्मों का एकदेश पालन करते हैं और साधुगण इन्हें पूर्णरूप से पालन करते हुये उसी भव से या दो चार भवों से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार वहां सातवें—लांतव नामक स्वर्ग में तेरह सागर की आयु प्रमाण सुखों का अनुभव कर अंत में समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर इस मध्यलोक में अवतीर्ण हो गये।

## *राजा हरिषेण*

इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशल देश है। उसकी राजधानी साकेतपुरी—अयोध्या में राजा वज्रसेन की रानी शीलवती थीं। सातवें स्वर्ग से च्युत होकर उस देव का जीव रानी शीलवती के गर्भ में आ गया। रानी ने उत्तम-उत्तम दोहले प्राप्त किये। नव माह के बाद पुत्र का जन्म होते ही राजा ने पूरे शहर में उत्सव मनाया। पुत्र का नाम 'हरिषेण' रखा। बाल्यक्रीड़ाओं के द्वारा माता-पिता आदि परिवार के जनों को हर्षित करते



हुये जहां राजमहल में आनंद की वृद्धि कर रहे थे वहीं पूरी अयोध्या के नागरिकों के आनंद समुद्र को बढ़ा रहे थे। युवावस्था में राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया।

कभी-कभी ये राजा हरिषेण अपनी राज्यसभा में नर्तकियों का नृत्य आदि देखते हुये आनंद विभोर हो जाते थे। कभी-कभी धर्मानुष्ठानों से प्रजा को धर्म में लगाकर आनंद का अनुभव करते थे। एक बार विरक्त होकर सारहीन माला के समान समस्त राज्यलक्ष्मी का त्याग कर दिया तथा उत्तम व्रत और शास्त्रज्ञान से सुशोभित श्री श्रुतसागर महामुनि के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के समय उनके गुरु ने 'शिष्य हरिषेण' के मस्तक पर विधिवत् मंत्रों से अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार किये थे। दीक्षा के अनंतर कुछ समय गुरु के निकट रहकर पश्चात् गुरु की आज्ञा से जिनकल्पी एकलविहारी महामुनि बन गये।

तब ये हरिषेण मुनिराज पर्वतों की चोटी पर बैठकर ध्यान करते थे। गर्मी के दिनों में पर्वत की चोटी पर ध्यान करना आतापन योग है। वर्षाऋतु में वृक्षों के नीचे ध्यान लगाकर बैठ जाना एवं शीतऋतु में खुले मैदान में ध्यान करना यह त्रिकाल योग कहलाता है। कहा भी है -

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।

ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर स्थित होकर, वर्षाकाल में रात्रि में वृक्षों के नीचे बैठकर एवं शीतकाल में खुले मैदान में स्थित होकर जो तपस्या करते हैं ऐसे साधुओं की हम नित्य ही वंदना करते हैं।

कभी-कभी ये महामुनि उद्यान में आये हुये शिष्यसमूह के लिये धर्म का उपदेश दिया करते थे। यह धर्मामृत की वर्षा सच्चे साधु ही कर सकते हैं। आज कल इस पंचमकाल में यहां इस भरतक्षेत्र में ऐसे सत्यधर्म के उपदेशक मुनि बहुत ही दुर्लभ हैं। कहा भी है-

कलिप्रावृड् मिथ्यादिङ्मेघच्छन्नासु दिक्ष्विह।
खद्योतवत् सुदेष्टारो हा द्योतन्ते क्वचित-क्वचित।।

इस कलिकालरूपी वर्षाकाल में चारों तरफ से मिथ्यात्व के बादल छाये हुये हैं। ऐसे समय में सच्चे धर्म के उपदेष्टा जुगनू के समान कहीं-कहीं ही

चमकते हैं। यह बड़े खेद की बात है।

किंतु महामुनि हरिषेण तो चतुर्थकाल में एक महान साधु हुये हैं। इन्होंने व्रतों की विशुद्धि को बढ़ाते हुये अंत में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़ा और महाशुक्र नाम के दसवें स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हो गये।

## *दसवें स्वर्ग में देव*

वहां पर महाशुक्र स्वर्ग में हरिषेणचर देव अपनी देवांगनाओं और देवपरिवार के साथ अनेक दिव्यसुखों का अनुभव करते रहते थे। कभी-कभी वे मध्यलोक में संयम की मूर्ति महामुनियों के दर्शनार्थ आ जाते थे, यहां आकर मुनियों की वंदना, भक्ति करके उनके प्रवचन सुनते थे अनेक प्रकार के प्रश्नों से जिनधर्म का विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे। कभी-कभी वे मध्यलोक के ४५८ जिनमंदिरों की वंदना करते थे। कभी-कभी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के हिमवान पर्वत पर आकर पद्मसरोवर आदि के कमलों की सुंदरता देखते हुये 'श्रीदेवी' के महल में मंदिर का भी दर्शन करते थे। हिमवान पर्वत के ग्यारह कूटों में जो पूर्व दिशा का सिद्धकूट है वहां जाकर अकृत्रिम जिनमंदिर के जिन प्रतिमाओं की वंदना करते पुनः विजयार्ध पर्वत के नव कूटों में से जो पूर्व दिशा का एक सिद्धकूट है उसके जिनमंदिर की वंदना करके गंगा-सिंधु नदियों की रमणीयता देखते थे। जो भरतक्षेत्र की रचना है उसका अवलोकन करते हुये छह खण्डों का विभाजन एवं आर्यखंड में अयोध्या, सम्मेदशिखर जैसे शाश्वत तीर्थों की वंदना करके विजयार्ध के विद्याधरों की श्रेणियों में भी जो कृत्रिम जिनमंदिर हैं तथा वहां जो केवली, श्रुतकेवली, महामुनि आदि तत्काल में विद्यमान थे उनके दर्शन करके प्रसन्न होते थे।

देवों में सम्यग्दृष्टि देवों का तो यह स्वभाव ही मानना चाहिये कि मध्यलोक में आकर धर्मायतनों के दर्शन करना, तीर्थंकरों के समवसरण में जाना,अकृत्रिम-कृत्रिम जैन मंदिर और जिनप्रतिमाओं के दर्शन करना।

जंबूद्वीप, धातकीखंड, पुष्करार्धद्वीप ऐसे ढ़ाई द्वीप के तथा नंदीश्वर द्वीप, कुंडलवर द्वीप और रुचकवर द्वीप के अकृत्रिम जिन मंदिरों की वंदना करना, सर्वत्र विक्रिया के बल से विचरण करते हुये भरतक्षेत्र आदि की



सुंदरता को देखना इत्यादि आनंद के लिये ही नहीं प्रत्युत् महान सातिशय पुण्यबंध के लिये भी कारण माने गये हैं।

वर्तमान में यह जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप की सुंदर भव्य आकर्षक रचना हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र पर बनी हुई है। इसे देखकर आप सभी भव्यात्मा जंबूद्वीप की, भरतक्षेत्र की एवं विदेहक्षेत्र आदि की सुंदरता का अनुमान लगा सकते हैं। आज जो महानुभाव हस्तिनापुर पहुँचकर जम्बूद्वीप का दर्शन करते हैं उनके मुख से एकबार सहसा यह वाक्य निकलता है कि -'अहो! हम तो स्वर्ग में आ गये! इससे अच्छा स्वर्ग भला और क्या होगा ?

जब कृत्रिम रचना को देखकर इतना आनंद होता है तब भला जो अकृत्रिम रचनाओं का साक्षात्कार करते होंगे उन्हें कितना आनंद प्राप्त होता होगा? वास्तव में देवगण ऐसे आनंद का अनुभव करते रहते हैं।

इस प्रकार यह हरिषेणचर देव वहां दसवें स्वर्ग में सोलह सागर की आयुपर्यंत दिव्यसुखों का अनुभव करके अंत में वहां की आयुपूर्ण कर वहां से च्युत होकर मध्यलोक में आ गया।

## *प्रियमित्र चक्रवर्ती*

धातकी खंड द्वीप की पूर्वदिशा संबंधी विदेहक्षेत्र के पूर्वभाग में स्थित पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र थे उनकी रानी का नाम मनोरमा था। इनके एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ उसका नाम 'प्रियमित्र' रखा गया। यह बालक धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हुआ पुनः चक्रवर्ती पद को प्राप्त कर समस्त भोगों का उपभोग किया।

चक्रवर्ती का वैभव—ऐरावत हाथी के समान चौरासी लाख हाथी, वायु के समान वेगशाली रत्नों से निर्मित चौरासी लाख रथ, पृथ्वी की तरह आकाश में भी गमन करने वाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़े एवं योद्धाओं का मर्दन करने वाले ऐसे चौरासी करोड़ पदाति—पियादे थे।

स्वयं चक्रवर्ती का शरीर वज्रमय—वज्रवृषभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान का था। छहखंड के सभी राजाओं में जितना कुछ बल होता है उन सबसे अधिक बल उनके एक शरीर में था। उनके चक्ररत्न के प्रभाव से छह खंड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर पर धारण करते

थे। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनके चरणों में नत थे।

चक्रवर्ती के छियानवे हजार रानियां थीं, जिनमें से बत्तीस हजार रानियां आर्यखंड की, बत्तीस हजार रानियां विद्याधरों की कन्यायें एवं बत्तीस हजार रानियां म्लेच्छ खंड में जन्मे राजाओं की थीं। ये सब अप्सराओं के समान सुंदर थीं।

बत्तीस हजार नाट्यशालायें थीं जिनमें हमेशा गीत, नृत्य, वाद्य आदि चलते रहते थे। स्वर्गपुरी के समान बहत्तर हजार नगर, नंदनवन जैसे बगीचों से शोभायमान छियानवें करोड़ गांव थे, निन्यानवें हजार द्रोणमुख थे जो कि समुद्र के समीपवर्ती थे एवं धन धान्य से अतिशय समृद्ध थे, अड़तालीस हजार पत्तन जोकि रत्नों की खान होने से रत्नाकर के समान थे, सोलह हजार 'खेट' जोकि कोट, अटारी, खाई और परकोटों से शोभायमान थे, समुद्र के बीच में होने वाले और कुभोगभूमिज मनुष्यों से भरे छप्पन अंतर्द्वीप थे जिनके चारों ओर खाई थी ऐसे चौदह हजार संवाह अर्थात् पर्वतों पर बसने वाले शहर थे।

भोजनशाला में चावल पकाने के लिये एक करोड़ बड़े-बड़े हंडे थे जिनमें बीज बोने की नली लगी हुई है ऐसे एक करोड़ हल थे, सात सौ कुक्षिवास थे, अठारह हजार आर्यखंड के म्लेच्छ राजा थे।

*नवनिधियां*—काल, महाकाल, नैसर्प, पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न ये नवनिधियों के नाम हैं।

*काल निधि*—से काव्य, कोष, अलंकार, व्याकरण आदि शास्त्र और वीणा, बांसुरी, नगाड़े आदि मिलते रहते हैं।

*महाकाल निधि से*—असि, मषि, कृषि आदि छह कर्मों के साधन ऐसे समस्त पदार्थ और संपदायें निरंतर उत्पन्न होती रहती हैं।

*नैसर्प निधि*—शय्या, आसन, मकान आदि देती है।

*पांडुक निधि*—समस्त धान्य और छहों रसों को उत्पन्न करती है।

*पद्मनिधि*—रेशमी, सूती आदि वस्त्र प्रदान करती थी।

*शंखनिधि*—सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाले सुवर्ण को देती है।

*सर्वरत्ननिधि*—इन्द्रनील, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक आदि अनेक प्रकार के रत्नों को एवं नाना प्रकार की मणियों को देती है।



इन नवनिधियों के साथ चक्रवर्तियों के चौदह रत्न होते हैं। जिनमें सात सजीव होते हैं और सात निर्जीव माने हैं। ये सब रत्न पृथ्वी की रक्षा, विशाल ऐश्वर्य और उपयोग के साधन हैं। चक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, मणि, चर्म और कांकिणी ये सात निर्जीव रत्न हैं। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, तक्ष-सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न हैं।

प्रियमित्र चक्रवर्ती ने सुदर्शन नामक चक्ररत्न से छहों खंडों को जीत लिया था। उनका 'सूर्यप्रभ' नाम का छत्र राजसभा में जगमग ज्योति फैलाता हुआ सूर्य की प्रभा को भी लज्जित करता रहता था। दण्डरत्न से विजयार्ध पर्वत की गुफा का द्वार खोला गया था। सौजन्दक तलवार को देखकर वैरी राजा कंपित होकर चक्रवर्ती की शरण में आ जाते थे। मणि-चूड़ामणि रत्न अंधकार को दूर कर देता था। चर्मरत्न से मेघकृत जल के उपद्रव से सेना की रक्षा होती थी। कांकिणीरत्न से गुफा में सूर्यचंद्र के आकार बनाकर प्रकाश फैलाया जाता था। सेनापति रत्न दिग्विजय में सभी योद्धाओं से अजेय रहता था। कामवृष्टि नामक गृहपति रत्न घर के सारे काम काज संभालता था। विजयगिरि नाम का उत्तम हाथी रत्न चक्रवर्ती का वाहन था। पवनंजय नाम का अश्वरत्न (घोड़ा) स्थल के समान समुद्र में भी दौड़ लगाता था। युवति नाम की स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के भोगसुख का साधन थी जोकि अपने हाथ की शक्ति से वज्र को भी चूर कर सकती थी। भद्रमुख नाम का तक्षरत्न दिग्विजय के समय स्थान-स्थान पर सुंदर महलों का निर्माण करता था और पुरोहित रत्न सभी निमित्तज्ञान आदि में प्रवीण हुआ संपूर्ण धार्मिक कार्यों को संपन्न कराता था।

*दशांग भोग*—चक्रवर्ती के रत्नों के साथ ही दशांग भोग माने गये हैं-

१. नवनिधियाँ २. पट्टरानियाँ ३. नगर ४. शय्या ५. आसन ६. सेना ७. नाट्यशालायें ८.भाजन ९.भोजन और १०. वाहन ये दश प्रकार के भोगोपभोग के साधन रहते हैं।

सोलह हजार गणबद्ध जाति के व्यंतर देव हाथ में तलवार लेकर निधिरत्न और चक्रवर्ती की रक्षा करने में तत्पर रहते थे। प्रियमित्र चक्रवर्ती ने पूर्वपुण्य के प्रभाव से ऐसे चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त किया।

उन्होंने चक्ररत्न के प्राप्त होने पर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करके

छहखंड पृथ्वी को जीत लिया पुनः न्यायनीतिपूर्वक एकछत्र शासन करते हुये प्रजा को पुत्र के समान सुख प्रदान किया।

एक दिन 'क्षेमंकर' भगवान के समवसरण में पहुंचकर भगवान के दर्शन किये। मनुष्यों के कोठे में बैठकर भगवान की दिव्यध्वनि से तत्वों का उपदेश सुना पुनः संसार के समस्त भोगों को क्षणभंगुर मानकर विरक्त हो गये। वापस आकर 'सर्वमित्र' नाम के अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर एक हजार राजाओं के साथ प्रभु के श्रीचरणों में दीक्षित हो गये। उस समय पांच समितियों और तीन गुप्तियोंरूप आठ प्रवचनमातृकाओं के साथ-साथ अहिंसा महाव्रत आदि पांच महाव्रत उन मुनिराज में पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त हुये थे। बहुत काल तक पृथ्वी तल पर विहरण करते हुये निर्जनवनों में ध्यान करते थे। कभी-कभी शरीर को रत्नत्रय का साधन मानकर श्रावक के घर में छ्यालीस दोष और बत्तीस अंतराय टालकर करपात्र में शुद्ध प्रासुक आहार ग्रहण करते थे पुनः वन में जाकर आत्मसिद्धि हेतु योगसाधना में लीन हो जाते थे। इस प्रकार मुनिचर्या का पालन करते हुये अन्त में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर महान त्याग के प्रभाव से बारहवें स्वर्ग में देव हो गये।

## *बारहवें स्वर्ग के देव*

प्रियमित्र चक्रवर्ती महामुनि ने सहस्रार स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया, सूर्यप्रभ इनका नाम था। वहां उनकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी। अणिमा, महिमा आदि अनेक ऋद्धियों से सहित थे। सबसे पहले ये देव जिनमंदिरों में पहुंचते हैं। जिनमंदिर में प्रतिमाओं की वंदना स्तुति करके पूजा की। इन जिनमंदिरों में एक सौ आठ जिनप्रतिमायें विराजमान रहती हैं। प्रत्येक मंदिर में झारी, कलश, दर्पण, चंवर, बीजना, सिंहासन, छत्र और ठो ये आठ मंगल द्रव्य एक सौ आठ-एक सौ आठ रहते हैं। इन मंदिरों में दुंदुभि, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, भेरी, झांझ, वीणा और बांसुरी आदि वाद्यों के उत्तम-उत्तम शब्द सदैव होते रहते हैं।

प्रत्येक जिनप्रतिमायें आठ प्रातिहार्यों से सहित हैं। अशोकवृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, छत्रत्रय, भामंडल और देव-दुंदुभि ये आठ प्रातिहार्य माने हैं।



सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षय के निमित्त गाढ़ भक्ति से सहित होकर विविध अष्ट द्रव्यों से जिनेंद्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।

तीनों लोकों में अकृत्रिम जिनमंदिरों की संख्या का प्रमाण बताया है। अधोलोक में नरकधरा के ऊपर भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप से लेकर रुचकवर' नाम के तेरहवें द्वीप तक चार सौ अट्ठावन मंदिर हैं । इनमें से जंबूद्वीप में सुमेरूपर्वत के १६, गजदंत के ४, जंबूवृक्ष शाल्मलिवृक्ष के २, सोलह वक्षारों के १६, चौंतीस विजयार्ध पर्वतों के ३४ एवं षट् कुलाचलों के ६ ये १६+४+२+१६+३४+६=७८ हुये। ऐसे पूर्वधातकी खंड के ७८, पश्चिम धातकी खंड के ७८, पूर्व पुष्करार्धद्वीप के ७८, पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के ७८, इष्वाकार के ४, मानुषोत्तर पर्वत के ४, नंदीश्वर द्वीप के ५२, कुंडलवर द्वीप के ४ और रुचकवर द्वीप के ४ ऐसे ७८+७८+७८+७८+७८+ ४+४+ ५२+४+४=४५८ हो गये।

ऊर्ध्वलोक के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार तेईस हैं। स्वर्गों के एवं नवग्रैवेयक आदि के जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं। सौधर्मस्वर्ग में ३२ लाख, ईशान में २८ लाख, सानत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल में ४ लाख, लांतव-कापिष्ठ में ५० हजार, शुक्र-महाशुक्र में ४० हजार, शतार सहस्रार में ६ हजार, आनत-प्राणत, आरण और अच्युत ऐसे चार कल्पों में सात सौ तीन अधोग्रैवेयक १११, तीन मध्यग्रैवेयक में १०७, तीन ऊर्ध्वग्रैवेयक में ९१, नव अनुदिश में ९ और पांच अनुत्तर में ५ ऐसे सब मिलाकर ३२०००० + २८००००० + १२०००००+८००००+४००००+५००००+४००००+६०००+ ७००+१११+१०७+९१+९+५=८४९७०२३ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। कुल मिलाकर ७७२००००+४५८+८४९७०२३=८५६९७४८१ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं।

इसके आगे व्यंतर देवों के यहां और ज्योतिषी देवों के यहां असंख्यातों जिनमंदिर माने गये हैं। इन प्रत्येक जिनमंदिरों में १०८-१०८ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं अतः उपर्युक्त जिनमंदिरों के जिन प्रतिमाओं की संख्या नव सौ पचीस करोड़ त्रेपन लाख, सत्ताइस हजार, नव सौ अड़तालीस हैं।

नव सौ पचीस कोटी त्रेपन, लाख सताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, शिवसुख हेतू करूँ प्रणाम।।

सम्यग्दृष्टि देव इन मंदिरों में से मध्यलोक के अकृत्रिम जिन मंदिरों की तो अतीव भक्ति से पूजा करते ही हैं जहां जहां संभव है वहां-वहां जाकर वे सूर्यप्रभ देव जिनप्रतिमाओं की वंदना किया करते हैं शेष जिनमंदिरों की परोक्ष से ही वंदना का पुण्य संचय किया करते थे।

कभी-कभी ये देव अपने देव परिवार के साथ मध्यलोक में आकर महामुनियों की वंदना करके उनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुन कर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार धर्माराधना में समय व्यतीत किया करते हैं।

आयु के अंत में स्वर्ग में ही सुंदर उद्यान में कल्पवृक्ष के नीचे महामंत्र का स्मरण करते हुये ध्यान में लीन हो गये। देव शरीर से प्राण निकल गये और वैक्रियिक शरीर तत्क्षण ही कपूर जैसा विलीयमान हो गया। वे मध्यलोक में इसी भरत क्षेत्र के छत्रपुर नगर में रानी के पुत्र हो गये।

## *नंदनमहाराज*

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में एक छत्रपुर नाम का नगर था। वहां के राजा नंदिवर्धन की रानी वीरवती के गर्भ में उपर्युक्त सूर्यप्रभ देव का जीव आ गया। नव माह के बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। पूरे राज्य में आनंद मंगल होने से राजा ने पुत्र का नाम 'नंद' रखा इसे नंदन भी कहते थे। नंदन बालक माता की अंगुली पकड़कर खेलते हुये महाराजा नंदिवर्धन का मनोरंजन किया करता था।

पुत्र के यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजा ने अपना राज्यभार पुत्र को सौंप दिया, क्योंकि यही सनातन परंपरा है। राजा नंद ने भी चिरकाल तक राज्य संचालन करते हुये प्रजा को खूब संतुष्ट किया। इष्ट—अभिलषित राज्य का उपभोग कर राजा नंद ने 'प्रोष्ठिल' नाम के गुरू के पास जैनेश्वरी दीक्षाग्रहण कर ली। मुनियों के संघ में धर्मोपदेश देकर सच्चे मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन कराते रहते थे।

इन्होंने ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष से गुरु के सान्निध्य में ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अंग और पूर्वरूप श्रुत का ज्ञान गुरु



के मुख से ही प्राप्त होता है कभी किसी को बिना गुरु के नहीं होता है।

*तीर्थंकर प्रकृति का बंध*

## *अच्युतेन्द्र*

नंद महामुनि समाधिमरण के प्रभाव से सोलहवें स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में 'इन्द्र' हो गये। इस सोलहवें स्वर्ग का नाम अच्युत है अतः ये इन्द्र अच्युतेन्द्र कहलाते थे।

देवों की उत्पत्ति के बारे में मूलाचार में कहा है-

देहस्स य णिव्वत्ती भिण्णमुहुत्तेण होइ देवाणं।
सव्वंगभूसणगुणं जोव्वणमवि होदि देहम्मि।।

***टीका में*** - जोव्वणं- यौवनं प्रथमवयः परमरमणीयावस्था सर्वालंकारसमन्विता अतिशयमतिशोभनं सर्वजननयनाल्हादनपरं, होदि- भवति, देहम्मि-देहे शरीरे। देवानां यौवनमपि शोभनं सर्वांगभूषणयुतं तेनैव भिन्नमुहूर्तेन भवतीति।

भवनवासी आदि चारों प्रकार के देवों के कुछ कम दो घड़ी के काल से—कुछ काम अंतर्मुहूर्त के काल से छहों पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं। सर्वकार्य करने में समर्थ शरीर भी पूर्ण बन जाता है। हाथ-पैर, मस्तक, कंठ आदि को विभूषित करने वाले वस्त्र आभूषण और नाना गुण भी पूर्ण हो जाते हैं। वह देव शरीर नव यौवन से संपन्न, परमरमणीय, सर्वालंकार से समन्वित, अतिशय सुंदर और सर्वजनों को आल्हादित करने वाला हो जाता है।

इन अच्युतेन्द्र की आयु बाईस सागर प्रमाण थी, तीन हाथ ऊंचा शरीर था, द्रव्य से- शरीर वर्ण से और भाव से दोनों ही शुक्ल लेश्यायें थीं, बाईस पक्ष में एक बार श्वास लेते थे। बाईस हजार वर्ष में एक बार मानसिक अमृत का आहार था, सदा मानसिक प्रवीचार—कामसेवन था अर्थात् मन में ही देवांगनाओं का स्मरण करने से कामभोग की तृप्ति हो जाती थी। अणिमा, महिमा आदि दिव्य ऋद्धियों से नाना प्रकार के सुखों का अनुभव करते थे। उनका अवधिज्ञान छठी पृथ्वी तक की बातों को जान लेता था, उनके विक्रिया की सीमा थी अर्थात् उनके अवधिज्ञान क्षेत्र के बराबर थी। अपने सामानिक आदि देवों और देवांगनाओं से घिरे हुये वे इंद्रराज अपने पुण्य कर्म के विशेष उदय से सुखरूपी सागर में सदा निमग्न

रहते थे।

कभी वे अपनी इन्द्रसभा में देव अप्सराओं का नृत्य देखते थे। कभी देव-देवियों के साथ मध्यलोक में जाकर द्वीप-समुद्रों की शोभा देखकर आनंद का अनुभव किया करते थे।

मध्यलोक में अकृत्रिम जिनमंदिर तेरह द्वीपों तक ही हैं अतः कभी-कभी ये इन्द्रराज रुचकवर द्वीप आदि में पहुंचकर १००८ दिव्य क्षीर सागर के जल से भरे कलशों से जिनप्रतिमाओं का महाभिषेक करके उत्सव मनाते थे, अष्टद्रव्य से पूजा करते थे और महान पुण्य का संचय कर लिया करते थे।

इस प्रकार ये अच्युतेन्द्र बाइस सागर पत दिव्य सुखों का अनुभव करके जब मनुष्य लोक में आने वाले थे, आयु में छह माह शेष रह गये तक सौधर्मेन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में कुंडलपुर नगर में अंतिम तीर्थंकर का जन्म होने वाला है अतः तुम जाकर जन्म से पंद्रह महिने पूर्व से ही रत्नों की वर्षा करना प्रारंभ कर दो। अच्युतेन्द्र सुरराज अपने पुष्पोत्तर विमान में ही थे और यहां कुंडलपुर का माहात्म्य बढ़ने लगा था।

## *पंचकल्याणक वैभव*

जब अच्युतेन्द्र की आयु छह मास बाकी रह गई तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश में कुंडलपुर[१] नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आँगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ प्रमाण रत्नों की धारा बरसने लगी। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन रात्रि के पिछले प्रहर में रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे और पुष्पोत्तर विमान से अच्युतेन्द्र का जीव च्युत होकर रानी के गर्भ में आ गया। प्रातःकाल राजा के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी अत्यन्त संतुष्ट हुई। तदनंतर देवों ने आकर गर्भ कल्याणक उत्सव मनाकर माता-पिता का अभिषेक करके उत्सव मनाया।

नव मास पूर्ण होने के बाद चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन रानी त्रिशला ने पुत्र को जन्म दिया। भगवान महावीर का जन्म तेरस की रात्रि में हुआ है ऐसा जयधवला में वर्णित है-

"आषाढजोण्हपक्खछट्ठीए कुंडलपुरणगराहिव-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहियणवमासे अच्छिय चइत्तसुक्कपक्ख-तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो[१]।।"

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार ४।



आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन कुंडलपुर नगर के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की रानी त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहां नव मास आठ दिन रहकर चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुये वर्द्धमान जिनेन्द्र ने जन्म लिया। उस समय देवों के स्थानों में अपने आप वाद्य बजने लगे, तीनों लोकों में सर्वत्र एक हर्ष की लहर दौड़ गई। सौधर्म इन्द्र ने बड़े वैभव के साथ सुमेरूपर्वत की पांडुकशिला पर क्षीरसागर के जल से भगवान का जन्माभिषेक किया। इन्द्र ने उस समय उनके "वीर" और "वर्धमान" ऐसे दो नाम रखे।

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ पच्चास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु भी इसी में शामिल है। कुछ कम बहत्तर वर्ष की आयु थी, सात हाथ ऊँचे, स्वर्ण वर्ण के थे। एक बार संजय और विजय नाम के चारणऋद्धिधारी मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न होने से भगवान के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आकर उनके दर्शन मात्र से ही संदेह से रहित हो गये तब उन मुनि ने उन बालक का "सन्मति" नाम रखा। किसी समय संगम नामक देव ने सर्प बनकर परीक्षा ली और भगवान को सफल देखकर उनका "महावीर" यह नाम रखा।

तीस वर्ष के बाद भगवान को पूर्वभव का स्मरण होने से वैराग्य हो गया तब लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त भगवान ने ज्ञातृवन में सालवृक्ष के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली और तत्काल मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त कर लिया। पारणा के दिन कूलग्राम की नगरी के कूल नामक राजा के यहाँ खीर का आहार ग्रहण किया। किसी समय उज्जयिनी के अतिमुक्तक वन में ध्यानारूढ़ भगवान पर महादेव नामक रुद्र ने भयंकर उपसर्ग करके विजयी भगवान का "महतिमहावीर" नाम रखकर स्तुति की। किसी दिन कौशाम्बी नगरी में सांकलों में बंधी चंदनबाला ने भगवान को पड़गाहन किया तब उसकी बेड़ी आदि टूट गई। मिट्टी का सकोरा

१. कसायाहुड, पुस्तक १ पृ. ७७

स्वर्णपात्र बन गया एवं कोदों का भात शालीचावल की खीर बन गया तभी सती चंदना ने नवधाभक्ति पूर्वक महामुनि महावीर को आहार देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किया।

छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष बाद जृंभिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में सालवृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला दशमी के दिन भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय इन्द्र ने केवलज्ञान की पूजा की। भगवान की दिव्यध्वनि के न खिरने पर इन्द्र गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को युक्ति से लाये तब उनका मान गलित होते ही वे भगवान से दीक्षित होकर मनःपर्यय ज्ञान और सप्तऋद्धि से विभूषित होकर प्रथम गणधर हो गये तब भगवान की दिव्यध्वनि खिरी। श्रावण कृष्ण एकम के दिन दिव्यध्वनि को सुनकर गौतम गणधर ने सायंकाल में द्वादशांग श्रुत की रचना की। इसके बाद वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए हैं। भगवान के समवसरण में मुनीश्वरों की संख्या चौदह हजार थी, चंदना आदि छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच थे। बारह गणों से वेष्टित भगवान ने विपुलाचल पर्वत पर और अन्यत्र भी आर्य खंड में बिहार कर सप्ततत्व आदि का उपदेश दिया।

अंत में पावापुर नगर के मनोहर नामक वन में अनेक सरोवरों के बीच शिलापट्ट पर विराजमान होकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को अंतिम प्रहर में स्वाति नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया। तब देवों ने मोक्ष कल्याणक की पूजा कर दीप मालिका जलायी थी। तब से लेकर आज तक कार्तिक कृष्णा अमावस्या को दीपावली पर्व मनाया जाता है।

भगवान के जीवन वृत्त से हमें यह समझना है कि मिथ्यात्व के फलस्वरूप जीव त्रस स्थावर योनियों में परिभ्रमण करता है। सम्यक्त्व और व्रतों के प्रसाद से चतुर्गति के दुखों से छूटकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है अतः मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दृष्टि बन करके व्रतों से अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिए।



## *भगवान महावीर निर्वाणभूमि पावापुरी जल मंदिर*

**पावापुरी में सरोवर के मध्य स्थित जल मंदिर ही भगवान महावीर की निर्वाणभूमि है।**

**श्री पूज्यपाद आचार्य ने निर्वाणभक्ति में कहा है—**

पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः।।१६।।
कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्राप्-व्यजरामममरमक्षयं सौख्यम् ।।१७।।
परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचंदन - कालागुरुसुरभिगोशीर्षैः।।१८।।
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि, गता दिवं खं च वनभवने।।१९।।

**पुनश्च—**

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे, पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्री वर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान् प्रविधूतपाप्मा।।२४।।

**श्रीगुणभद्र आचार्य ने उत्तरपुराण में कहा है—**

क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनान्तरे।
बहूनां सरसां मध्ये महामणिशिलातले।।५०९।।
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये।।५१०।।
स्वातियोगो तृतीयेद्धः शुक्लध्यानपरायणः।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः।।५११।।
हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम्।।५१२।।
तदेव पुरुषार्थस्य पर्यन्तोऽनन्तसौख्यकृत्।
अथ सर्वेऽपि देवेन्द्रा यद्दनन्द्रमुकुटस्फुरत्।।५१३।।
हुताशनशिखान्यस्त-तद्देहा मोहविद्विषम्।
अभ्यर्च्य गन्धमाल्यादि-द्रव्यैर्दिव्यैर्यथाविधि।।५१४।।

वन्दिष्यन्ते भवातीतमर्थ्यैर्वन्दारवः स्तवैः।
वीरनिर्वृतिसम्प्राप्तदिन एवास्तघातिकः।।५१५।।
भविष्याम्यहमप्युद्यत्केवलज्ञानलोचनः।
भव्यानां धर्मदेशेनविहृत्य विषयांस्ततः[1]।।५१६।।

**यहाँ अभिप्राय यह है कि पावापुरी के मनोहर नाम के उद्यान में कमलों से व्याप्त सरोवर के मध्य महामणिमयी शिला पर भगवान विराजमान हुए उस समय समवसरण विघटित हो चुका था। श्रीविहार बंद कर दो दिन तक ध्यान में लीन हुए महावीर स्वामी ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अंत में अघातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाणपद प्राप्त कर लिया। तभी सौधर्मेन्द्र आदि इन्द्रों ने अग्निकुमार इन्द्र के मुकुट के अग्रभाग से निर्गत अग्नि पर प्रभु का शरीर स्थापित कर दिव्य चन्दन आदि के द्वारा पूजा करके संस्कार कर दिया। उसी दिन गौतमस्वामी को वहीं पर केवलज्ञान प्रगट हुआ है।**

**हरिवंशपुराण में भी यही लिखा है एवं दीपावली पर्व तभी प्रारंभ हुआ, ऐसा कहा है—**

जिनेंद्रवीरोऽपि विबोध्य संततं, समन्ततो भव्यसमूहसन्ततिम्।
प्रपद्य पावानगरीं गरीयसीं, मनोहरोद्यानवने तदीयके।।१५।।
चतुर्थकाले ऽर्धचतुर्थमासकै-र्विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूतसु-प्रभातसन्ध्यासमये स्वभावतः।।१६।।
अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको, विधूय घातीन्धनवद् विबंधनः।
विबन्धनस्थानमवाप शंकरो, निरन्तरायोरुसुखानुबन्धनम् ।।१७।।
स पञ्चकल्याणमहामहेश्वरः, प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः।
शरीरपूजाविधिना विधानतः, सुरैः समभ्यर्च्यत सिद्धशासनः।।१८।।
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः, प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते।।१९।।
ततौ च श्रेणिकपूर्वभूभुजः, प्रकृत्य कल्याणमहं सहप्रजाः।
प्रजग्मुरिन्द्राश्च सुरैर्यथायथं, प्रभुचमाना जिनबोधिमर्थिनः।।२०।।

१. उत्तरपुराण, पर्व ७६।



ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्, प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं, जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्[2]।।२१।।

**सार यही है कि भगवान महावीर पावापुरी के मनोहर उद्यान में विराजमान हुए। जब चतुर्थकाल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे तब स्वाति नक्षत्र में कार्तिक अमावस्या के दिन प्रातः-उषाकाल के समय स्वभाव से योग निरोधकर शुक्लध्यान के द्वारा सर्वकर्म नष्ट कर निर्वाण को प्राप्त हो गये। उस समय चार निकाय के देवों ने विधिपूर्वक भगवान के शरीर की पूजा की। अनन्तर सुर-असुरों द्वारा जलाई हुई बहुत भारी देदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा। श्रेणिक आदि राजाओं ने भी प्रजा के साथ मिलकर भगवान के निर्वाणकल्याणक की पूजा की पुनः रत्नत्रय की याचना करते हुए सभी इन्द्र, मनुष्य आदि अपने-अपने स्थान चले गये।**

**उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् भगवान् के निर्वाणकल्याणक की स्मृति में दीपावली पर्व मनाने लगे।**

*इन्द्र ने प्रभु के चरण उत्कीर्ण किए—*

**एक प्रकरण हरिवंशपुराण में आया है कि—**

**जब भगवान नेमिनाथ गिरनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त कर चुके तब इन्द्रों ने भगवान की निर्वाणकल्याणक पूजा के बाद गिरनार पर्वत पर वज्र से चरण उत्कीर्ण कर इस लोक में पवित्र सिद्धशिला का निर्माण किया तथा उसे जिनेन्द्र भगवान के लक्षणों के समूह से युक्त किया। यथा—**

ऊर्जयन्तगिरौ वज्री वज्रेणालिख्य पावनीम्।
लोके सिद्धशिलां चक्रे जिनलक्षण पंक्तिभिः[2]।।१४।।

**श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी स्वयंभूस्तोत्र में लिखा है—**

ककुदं भुवः खचरयोषिदुपितशिखरैरलंकृतः।
मेघपटलपरिवीत तटस्त्वतव लक्षणानि लिखिताने वज्रिणा।।१२७।।

१. उत्तरपुराण, पर्व ६६। २. उत्तरपुराण, पर्व ६५।

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च, सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो, भूसमूर्जयन्त विश्रुतोऽचलः।।१२८।।

बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहते थे कि-इसी प्रकार से पावापुरी सरोवर के मध्य मणिमयी शिला से भगवान के मोक्ष जाने के बाद इन्द्रों ने वज्र से यहाँ पर भी चरणचिन्ह उत्कीर्ण करके इस शिला को सिद्धशिला के समान पूज्य पवित्र बनाया था।

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि भगवान केवलज्ञान होने के बाद पाँच हजार धनुष—बीस हजार हाथ प्रमाण ऊपर आकाश में अधर पहुँच जाते हैं। अधर में ही कुबेर द्वारा समवसरण की रचना की जाती है। जब भगवान श्रीविहार करते हैं तब समवसरण विघटित हो जाता है और भगवान आकाश में अधर चलते हैं तब देवगण प्रभु के चरणों के नीचे स्वर्णमयी दिव्य कमलों की रचना करते रहते हैं। निर्वाणभक्ति के पूर्व भी जब भगवान योग निरोध करते हैं तब वे आकाश में अधर ही रहते हैं। फिर भी उनके ठीक नीचे की भूमि भगवान की निर्वाणभूमि मानी जाती है चूँकि सिद्ध भगवान सिद्धशिला पर भी ठीक उसी भूमि के ऊपर विराजमान हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर स्वामी जहाँ से मोक्ष गये हैं ठीक वहीं पर उनके शरीर का संस्कार किया गया है और वहीं पर सरोवर के मध्य मणिमयी शिला पर इन्द्रों ने चरण उत्कीर्ण किए थे। ऐसे ही सम्मेदशिखर पर्वत के सभी टोंकों पर इन्द्रों द्वारा चरण उत्कीर्ण किए गये हैं ऐसा मानना चाहिए।

ऐसी सिद्धभूमि पावापुरी को मेरा अनन्त-अनन्त बार नमस्कार होवे।

## *श्रुतज्ञान के भेद*

श्रुतज्ञानके अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य से दो भेद भी माने हैं। जिसमें अंग प्रविष्ट के द्वादशांग रूप बारह भेद और अंग बाह्य के अनेकों भेद होते हैं। द्वादशांग में प्रत्येक के दो पदों का प्रमाण बतलाया गया है जो कि श्रुतस्कंध यंत्र में स्पष्ट है और जिन अक्षरों के पद न बन सकें वे ही अंग बाह्य कहलाते हैं। उनके सामायिक, स्तव, वंदना आदि भेद वर्णित हैं।



गणधर[1] देव के शिष्य प्रशिष्यों द्वारा अल्पायु बुद्धि वाले प्राणियों के अनुग्रह के लिए अंगों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रंथ अंग बाह्य हैं। इसमें कालिक उत्कालिक आदि अनेकों भेद हैं। स्वाध्याय काल में जिनके पठन-पाठन का नियम है उन्हें कालिक एवं जिनके पठन-पाठन का नियत समय न हो उन्हें उत्कालिक कहते हैं।

भगवान की वाणी के चार अनुयोगरूप से भी विभाजित किया गया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

*प्रथमानुयोग* — चार पुरुषार्थों का आख्यान जिसमें है ऐसे ग्रन्थ—चरित ग्रन्थ, पुराण ग्रन्थ, पुण्योत्पादक शास्त्र, बोधि-रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि के लिए खानस्वरूप शास्त्र प्रथमानुयोग कहलाते हैं। इस अनुयोग में मुख्य रूप से त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन किया जाता है।

*करणानुयोग* —जो शास्त्र लोकालोक के विभाग को, युग के परिवर्तन और चतुर्गतियों को दिखलाने के लिए दर्पण के समान है वह करणानुयोग है।

*चरणानुयोग* —श्रावक और मुनियों के चरित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का जिसमें वर्णन है वह चरणानुयोग है।

द्रव्यानुयोग —जिसमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप और बंध मोक्ष का विस्तृत वर्णन है वे द्रव्यानुयोग शास्त्र हैं।[2]

वर्तमान काल के —

## *त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम*

इस चतुर्थ काल में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण ऐसे त्रेसठ महापुरुष होते हैं। इनमें से भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर और महाराज भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए हैं।

२४ तीर्थंकर-ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंदप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अरनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, और वर्धमान।

१२ चक्रवर्ती — भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर,

---

१. 'आरातीयाचार्य कृतांगार्थप्रत्यासन्नरूपमंगबाह्यम्'।।१३।। तत्त्वार्थवार्तिक

२. रत्नकरण्डश्रावकाचार्

सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त।

९ बलभद्र — विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ सुदर्शन, नंदी, नंदिमित्र, रामचन्द्र और पद्म।

९ नारायण — त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण, और श्रीकृष्ण।

९ प्रतिनारायण— अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुंभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासन्ध।

ये शलाका पुरुष चतुर्थकाल में ही होते हैं। ऐसे ही ये महापुरुष पूर्वकाल में भी अनंतों हो चुके हैं और भविष्य में भी होते ही रहेंगे।

*धर्म तीर्थ व्युच्छित्ति*—पुष्पदंत से लेकर धर्मनाथपर्यंत सात तीर्थों में जिनधर्म की व्युच्छित्ति हुई है, शेष सोलह तीर्थंकरों के तीर्थों में धर्म की परंपरा निरंतर रही है, अर्थात् पुष्पदंत भगवान के तीर्थ में पावपल्य, शीतलनाथ के तीर्थ में अर्द्धपल्य, श्रेयांसनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, वासुपूज्य के तीर्थ में एक पल्य, विमलनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, अनंतनाथ के तीर्थ में अर्द्धपल्य और धर्मनाथ के तीर्थ में पाव पल्य प्रमाण धर्मतीर्थ का उच्छेद रहा है। उस समय दीक्षा लेने वालों का अभाव होने से धर्मरूपी सूर्य अस्त हो गया था, हुंडावसर्पिणी के दोष से ये सात व्युच्छेद होते हैं।

*कुदान की प्रथा*—श्री शीतलनाथ के तीर्थ के अंतिम भाग में कालदोष से वक्ता, श्रोता और आचरण करने वालों का अभाव हो जाने से समीचीन धर्म का नाश हो गया। मदिल देश में मलय देश का राजा मेघरथ कुछ दान देना चाहता था उसने कुमार्गगामी परंपरा से आगत आहार, औषध, अभय और शास्त्र दान को छोड़कर मुंहशालायन ब्राह्मण के द्वारा कहे हुए कन्यादान, हस्तिदान, सुवर्णदान, अश्वदान, गोदान, दासीदान, तिलदान, रथदान, भूमिदान और गृहदान यह दश प्रकार का दान स्वेच्छा से चलाया।

*हिंसा यज्ञ की उत्पत्ति*—मुनिसुव्रतनाथ के मोक्ष जाने के बाद एक समय 'क्षीरकदंब' उपाध्याय के पास राजपुत्र वसु, गुरुपुत्र पर्वत और धर्मनिष्ठ श्रावक नारद इन तीनों ने विद्याध्ययन किया था। गुरु के दीक्षित होने के बाद किसी समय पर्वत ने सभा में कहा कि 'अजैर्यष्टव्यं' बकरों से होम करना चाहिए ऐसा अर्थ है तब नारद ने कहा 'अज' का अर्थ न उगने योग्य पुराने



धान्य हैं उनसे यज्ञ करना चाहिए ऐसा गुरुदेव ने अर्थ किया था किंतु पर्वत ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। अंत में राजा वसु के राजदरबार में निर्णय गया। वसु ने यथार्थ जानते हुये भी गुरुपत्नी पर्वत की माता से वचनबद्ध होने से पर्वत के हिंसामय वचनों को सत्य कह दिया, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी में सिंहासन के धँसने से मरकर नरक गया। इधर पर्वत ने महाकाल नामक असुर की सहायता से यज्ञ में खूब हिंसा करायी और उसके फल से ये सब दुर्गति के पात्र हो गये किंतु नारद हिंसा का निषेध करने से स्वर्ग गया।

भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थ में ही मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र हुए हैं। नेमिनाथ भगवान के समय उनके चचेरे बंधु श्रीकृष्ण नारायण हुए हैं।

*तीर्थंकरों का अंतराल*—भगवान ऋषभदेव के मोक्ष चले जाने के बाद पचास लाख करोड़ सागर बीत जाने पर अजितनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था। इनकी आयु भी इसी अंतराल में शामिल थी।

आगे सर्वत्र अंतराल की संख्या में उन-उन तीर्थंकरों की आयु को सम्मिलित ही समझना।

श्री अजितनाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर संभवनाथ उत्पन्न हुए थे।

श्री संभवनाथ के बाद दश लाख करोड़ वर्ष का अंतराल बीत जाने पर अभिनंदननाथ अवतीर्ण हुए थे।

इनके बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर सुमतिनाथ उत्पन्न हुए थे।

इनके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर पद्मप्रभ तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे।

इनके अनंतर नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर सुपार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे।

अनंतर नौ सौ करोड़ सागर का अंतर बीत जाने पर चंद्रप्रभ जिनेन्द्र ने जन्म लिया था।

इसके पश्चात नब्बे करोड़ सागर का अंतर निकल जाने पर पुष्पदंत तीर्थंकर हुए हैं।

इनके बाद नौ करोड़ सागर का अंतर बीत जाने पर शीतलनाथ ने जन्म लिया है।

इन शीतलनाथ के अनंतर जब सौ सागर तथा छ्यासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर प्रमाण अंतराल निकल गया तब श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ है।

श्रेयांसनाथ के बाद जब चौवन सागर प्रमाण अंतर बीत चुका था और अंतिम पल्य के तृतीय भाग में जब धर्म की संतति का व्युच्छेद हो गया था तब वासुपूज्य का जन्म हुआ था।

इनके बाद जब तीस सागर वर्ष बीत गये और पल्य के अंतिम भाग में धर्म का विच्छेद हो गया था तब विमलनाथ का जन्म हुआ था।

विमलनाथ के मोक्ष चले जाने के बाद नौ सागर और पौन पल्य बीत जाने पर तथा अंतिम समय में धर्म का विच्छेद हो जाने पर श्री अनंतनाथ का जन्म हुआ था।

इनके बाद चार सागर प्रमाण काल बीत चुका और अंतिम पल्य का आधा भाग जब धर्म रहित हो गया तब धर्मनाथ का जन्म हुआ था।

धर्मनाथ के बाद पौन पल्य कम तीन सागर के बीत जाने पर तथा पाव पल्य तक धर्म का विच्छेद हो लेने पर श्री शांतिनाथ भगवान उत्पन्न हुए थे।

इनके बाद अर्धपल्य बीत जाने पर श्री कुंथुनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके अनंतर एक हजार करोड़ वर्ष कम पल्य का चतुर्थ भाग बीत जाने पर श्री अरनाथ उत्पन्न हुए है।

इनके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर मल्लिनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर मुनिसुव्रतनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद साठ लाख वर्ष बीत जाने पर नमिनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिजिनेन्द्र उत्पन्न हुए हैं।

श्री नेमिनाथ भगवान के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर पार्श्वनाथ जिनेन्द्र का जन्म हुआ है।

श्री पार्श्वनाथ के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे। इनकी आयु भी इसी में शामिल[1] थी[2]।

*तीर्थंकर के वर्ण*—पद्मप्रभ, वासुपूज्य का रक्तवर्ण, चन्द्रप्रभ और

१. ऐसे ही सभी अंतरालों में तीर्थंकरो की आयु शामिल समझना।
२. यह अंतरालों का वर्णन उत्तर पुराण के आधार से है।



पुष्पदंत का श्वेतवर्ण, सुपार्श्व और पार्श्व का हरितवर्ण, नेमिनाथ और मुनिसुव्रत का नीलवर्ण एवं शेष सोलह तीर्थंकर का स्वर्ण वर्ण है।

*बालयति*—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी रहे हैं। शेष उन्नीस तीर्थंकर विवाहित होकर राज्य करके दीक्षित हुए हैं।

*वंश*—वीर प्रभु नाथवंशी, पार्श्वजिन उग्रवंशी, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ हरिवंशी, धर्मनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंशी और शेष सत्तरह तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंश में हुए हैं।

*रत्नवृष्टि*—समस्त तीर्थंकरों की आदि पारणाओं और वर्धमान स्वामी की सभी पारणाओं में नियम से रत्नवृष्टि हुआ करती थी। वह रत्नवृष्टि उत्कृष्टता से साढ़े बारह करोड़ और जघन्य रूप से साढ़े बारह लाख होती थी। इनमें से कितने ही दाता तो तपश्चरण कर उसी जन्म से मोक्ष चले गये और कितने ही जिनेन्द्र भगवान के मोक्ष जाने के बाद तीसरे भव में मोक्ष गये हैं।[1]

*केवलज्ञान उत्पत्ति के समय उपवास*—ऋषभदेव, मल्लिनाथ, और पार्श्वनाथ को तेला के बाद, वासुपूज्य को एक उपवास के बाद और शेष तीर्थंकरों को बेला के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है।[2]

केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान—ऋषभनाथ को पूर्वताल नगर के शकटमुख वन में, नेमिनाथ को गिरनार पर्वत पर, पार्श्वनाथ को आश्रम के समीप, भगवान महावीर को ऋजुकूला नदी के तट पर और शेष तीर्थंकरों को अपने-अपने नगर के उद्यानों में ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।[3]

प्रत्येक तीर्थंकरों ने जिस वृक्ष के नीचे दीक्षा ली है उसी वृक्ष के नीचे उन्हें केवलज्ञान हुआ है ऐसा उल्लेख है।

*मुक्ति प्राप्ति के आसन*—ऋषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ पर्यंक आसन से तथा शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसन से स्थित हो मोक्ष गए हैं।[4]

*योग निरोध काल*—ऋषभदेव ने मुक्ति के पूर्व चौदह दिन तक योग निरोध किया। महावीर स्वामी ने दो दिन और शेष तीर्थंकरों ने एक-एक

१-२-३-४. हरिवंश पु. पृ. ६०।

मास तक योग निरोध किया है।[1]

वीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष काल के व्यतीत होने पर 'दुषमा' नामक पंचम काल प्रवेश करता है।

*अनुबद्ध केवली*—जिस दिन महावीर भगवान सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम स्वामी के मुक्ति जाने के दिन श्री सुधर्म स्वामी केवली हुए और इनके मोक्ष जाने के दिन जंबूस्वामी केवली हुए। जंबूस्वामी के सिद्ध होने पर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुए। गौतम स्वामी से लेकर जंबूस्वामी तक काल ६२ वर्ष प्रमाण है।

*श्रुतकेवली*—नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच द्वादशांग ज्ञान के धारी श्रुतकेवली हुए हैं। इनका काल १०० वर्ष प्रमाण है। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु से दीक्षित, मुकुटधरों में अंतिम चन्द्रगुप्त सम्राट ने जिन दीक्षा ली थी, इसके बाद मुकुटबद्ध राजा मुनि नहीं हुए।

*दशपूर्वी*—विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और दश पूर्व के धारी 'दशपूर्वी' कहलाये। इनका काल १८३ वर्ष है।

*ग्यारह अंगधारी*—नक्षत्राचार्य, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंसार्य ये पाँच मुनि ग्यारह अंगधारी हुए हैं। इनका काल २२० वर्ष है।

*आचारांग धारी*—सुभद्राचार्य , यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य एक आचारांग मात्र के धारी हुए हैं। इनका काल ११८ वर्ष है। गौतम स्वामी से लेकर लोहाचार्य तक ६३+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष में अंगधारी हुए हैं। इनके बाद इस भरत क्षेत्र में भी आचार्य अंग पूर्व के धारक नहीं हुए हैं। उनके अंशों के जानने वाले अवश्य हुए हैं।

जो श्रुततीर्थ, धर्म की प्रवृत्ति में कारण है वह श्रुतपरंपरा बीस हजार तीन सौ सत्तरह (२०३१७) वर्षों तक यहाँ चलती रहेगी। अनंतर पंचम काल के अंत में व्युच्छेद को प्राप्त हो जावेगी। इतने मात्र समय में प्रायः चातुर्वर्ण्य संघ जन्मे लेता रहेगा।[2] अर्थात् उपर्युक्त ६८३+२०३१७=२१००० वर्ष तक धर्मतीर्थ परंपरा अव्युच्छिन्न रहेगी। तात्पर्य यह हुआ कि पंचम काल के अंत तक धर्म व चतुर्विध संघ विद्यमान रहेगा।

१ तिलोयपण्णत्ति अ. ४, गा. १४९४.१४९५। २. तिलोयपण्णत्ति अ. ४, गा. १४९४.१४९५।



*राज्य परंपरा*—वीर प्रभु के निर्वाण के बाद 'पालक' नामक अवन्ति सुत का राज्याभिषेक हुआ। पालक का ६० वर्ष , विजय वंशियों का १५५ वर्ष, मुरुंडवंशियों का ४०, पुण्यमित्र का ३०, वसुमित्र-अग्निमित्र का ६०, गंधर्व का १००, नरवाहन का ४०, भृत्य-आंध्रों का २४२, गुप्तवंशियों का २३१ वर्ष प्रमाण राज्य काल रहा है पश्चात् इंद्र का सुत कल्की उत्पन्न हुआ, इसका नाम चतुर्मुख, आयु ७० वर्ष और राज्यकाल ४२ वर्ष रहा। श्री वीरप्रभु के सिद्ध होने के बाद छह सौ पाँच वर्ष और पाँच माह व्यतीत होने पर 'विक्रम' नामक शक राजा हुए हैं। उनके बाद तीन सौ चौरानवे वर्ष, सात माह व्यतीत होने पर प्रथम कल्की हुआ है[1]।"

आचारांगधरों के २७५ वर्ष पश्चात् कल्की राजा को पट्ट बांधा गया। ६८३+२७५+४२=१००० वर्ष। उस कल्की ने श्रमण साधु से प्रथम ग्रास को शुल्क रूप में माँगा तब मुनि 'यह अंतरायों का काल है" ऐसा समझकर निराहार चले गये, उस समय उनमें से किसी एक को अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया, तब कोई असुरदेव ने अवधिज्ञान से मुनिगणों के उपसर्ग को जानकर, उसे धर्म द्रोही मानकर उस कल्की को मार डाला पुनः अजितंजय नाम के उसके पुत्र ने 'मेरी रक्षा करो' ऐसा कहकर उस देव के चरणों में नमस्कार किया और उस देव ने 'धर्म पूर्वक राज्य करो' ऐसा कहकर उसकी रक्षा की और वह जैन धर्मी बन गया।

ऐसा हजार-हजार वर्ष में एक-एक कल्की और पाँच सौ, पाँच सौ वर्षों के पश्चात् उनके बीच-बीच में एक-एक उपकल्की होते हैं। प्रत्येक कल्की के समय पंचम कालवर्ती एक-एक साधु को अवधिज्ञान प्राप्त होता है और उस समय चातुर्वर्ण्य संघ अल्प हो जाते हैं।

पंचम काल के अंत समय जलमंथन नामा अंतिम कल्की होगा, उस समय 'वीरांगज' नाम के मुनि, 'सर्वश्री आर्यिका, अग्निल श्रावक और पंगुश्री श्राविका होंगी। अंतिम कल्की मुनिराज के आहार का प्रथम ग्रास शुल्क रूप में माँगेगा तब मुनि उसे देकर अंतराय करके वापस जाकर अवधिज्ञान को प्राप्त करके आर्यिका, श्रावक और श्राविका को बुलाकर

१. त्रिलोकसार

कहेंगे कि अब पंचम काल का अंत आ चुका है, हमारी और तुम्हारी तीन दिन की आयु शेष है। चारों सल्लेखना से मरण करके सौधर्म स्वर्ग जायेंगे और कुमार देव द्वारा मार दिये जाने पर वह कल्की नरक जायेगा। प्रातःकाल धर्म का नाश, मध्याह्न में राजा का नाश और सूर्यास्त समय अग्नि का अभाव हो जावेगा।

*छठा काल*—पश्चात् तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम दुषमा-दुषमा नाम का छठा काल प्रविष्ट होगा। उस समय मनुष्यों की ऊँचाई तीन हाथ से एक हाथ तक, आयु बीस से सोलह वर्ष तक होगी। वे कंदमूल, फल, मत्स्य माँसादि खायेंगे, नंगे वनों में विचरेंगे। अंधे, गूंगे, बधिर, कुरूप आदि होंगे। नरक और तिर्यञ्चगति से आयेंगे और इन्हीं दो गतियों में जायेंगे।

उनचास दिन कम इक्कीस हजार वर्ष के बीतने पर संवर्तक नामक वायु से महा प्रलय होगा। उस समय बहत्तर युगल और भी संख्यात जीवों को देव विद्याधर दया से विजयार्ध की गुफा आदि में सुरक्षित रखेंगे। यहाँ ४९ दिन तक बर्फ, क्षार, विष, अग्नि आदि की वर्षा से सब पर्वत आदि समाप्त होकर एक योजन तक पृथ्वी जल जावेगी।

अनंतर उत्सर्पिणी काल प्रवेश करेगा। तब जल, दूध, घृत और अमृत की वर्षा होकर पृथ्वी अच्छी हो जावेगी। ये युगल जीव गुफाओं से निकलेंगे। धीरे-धीरे आयु, ऊँचाई, बल आदि बढ़ते-बढ़ते इक्कीस हजार वर्ष समाप्त होकर द्वितीय काल प्रवेश करेगा। इसके हजार वर्ष शेष रहने पर अर्थात् बीस हजार वर्ष बीत जाने पर कुलकरों की उत्पत्ति होगी पुनः अंतिम कुलकर से श्रेणिक का जीव 'महापद्म' नाम का तीर्थंकर होगा तब से पुनः धर्म की परंपरा चलेगी।

इस प्रकार भरत क्षेत्र में यह काल परिवर्तन चलता रहता है।



# *भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर एक वास्तविक तथ्य*

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की तीर्थंकर परम्परा में अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के २६००वें जन्मजयंती महोत्सव के संदर्भ में प्राचीन जैनसिद्धान्त एवं पुराणग्रन्थों के अनुसार महावीर स्वामी का शोधपूर्ण वास्तविक परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्रीयतिवृषभआचार्य द्वारा रचित "त्रिलोयपण्णत्ति" ग्रन्थ में वर्णन आया है कि-

सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं, णयरम्मि कुंडले वीरो,उत्तरफग्गुणिरिक्खे, चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो ।।५४६ ।। (चउत्थो महाधियारो) पृ. २१०

अर्थात् भगवान महावीर कुण्डलपुर जिला नालन्दा (बिहार प्रदेश) में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

षट्खण्डागम के चतुर्थ खण्ड एवं नवमी पुस्तक की टीका में श्रीवीरसेनाचार्य ने भी कहा है कि-

"आषाढ जोण्ण पक्ख छट्ठीए कुण्डलपुर णगराहिव णाहवंश सिद्धात्थ णरिन्दस्स तिसिला देवीए गब्भमागंतणेसु तत्थ अट्ठादिवसाहिय णवमासे अच्छिम चइत्त सुकख पक्ख तेरसीए उत्तराफग्गुणी गब्भादो णिक्खंतो।"

वर्तमान समय से २५९९ वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के नालन्दा जिले में स्थित "कुण्डलपुर" नगर में जब भगवान महावीर ने जन्म लिया तो जन्म से १५ महीने पूर्व से ही माता त्रिशला के आँगन में रत्नवृष्टि हुई थी। इस रत्नवृष्टि के विषय में "उत्तरपुराण" नामक आर्षग्रन्थ में श्रीगुणभद्रसूरि कहते हैं-

तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति । भरतेस्मिन् विदेहाख्ये, विषये भवनांगणे ।।२५१ ।। राज्ञः कुंडपुरेशस्य, वसुधारापतत्पृथु । सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः, सिद्धार्थस्य दिनं प्रति ।।२५२ ।। आषाढे सिते पक्षे.....(उत्तरपुराण पर्व ७४)

अर्थ-जब अच्युत स्वर्ग में उसकी आयु छह महीने की रह गई और वह स्वर्ग से अवतार लेने के सन्मुख हुआ उस समय इसी भरतक्षेत्र के विदेह नामक देश

में "कुण्डलपुर" नगर के राजा सिद्धार्थ के घर प्रतिदिन साढ़े ती करोड़ मणियों की भारी वर्षा होने लगी।

हरिवंशपुराण में भी श्रीजिनसेनाचार्य ने द्वितीय सर्ग के अन्दर श्लोक नं. ५ से २४ तक महावीर स्वामी के गर्भकल्याणक का प्रकरण लिखते हुए कुण्डलपुर नगरी का विस्तृत वर्णन किया है तथा उस नगरी की महिमा महावीर के जन्म से ही सार्थक बताते हुये कहा है कि-

एतावतैव पर्याप्तं, पुरस्य गुणवर्णनम्। स्वर्गावतरणे तद्यद्वीरस्याधारतां गतम्।।१२।।
(भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हरिवंशपुराण)

*अर्थ*- इस कुण्डलपुर नगर के गुणों का वर्णन तो इतने से ही पर्याप्त हो जाता है कि वह नगर स्वर्ग से अवतार लेते समय भगवान महावीर का आधार बनी-भगवान महावीर वहाँ स्वर्ग से आकर अवतीर्ण हुए।

यहाँ विदेह देश के वर्णन से पूरा बिहारप्रान्त माना गया है। उसके अन्दर एक विशाल (९६ मील का ) नगर था जैसे-मालवादेश में "उज्जयिनी" नगरी, कौशलदेश में "अयोध्या" नगरी, वत्सदेश में "कौशाम्बी" नगरी आदि के वर्णन से बड़े-बड़े जिलों एवं प्रान्तों के अन्दर राजधानी के रूप में भगवन्तों की जन्मनगरियाँ समझनी चाहिए न कि आज के समान छोटे से ग्राम को तीर्थंकर की जन्मभूमि समझाना चाहिए।

महाकवि श्रीपुष्पदंत विरचित "वीरजिणिंदचरिउ" (भारतीय ज्ञानपीठ से सन् १९७४ में प्रकाशित) के पृष्ठा ११-१२-१३ पर अपभ्रंश भाषा में वर्णन आया है कि-

इह जंबूद्वीवि भरहंतरालि।रमणीय विसई सोहा विसालि।।
कुंडउरि राउ सिद्धत्थ सहिउ।जो सिरिहरु मग्गण वेस रहिउ।।

इन पद्यो का हिन्दी अनुवाद करते हुये डॉ. हीरालाल ने लिखा है कि-

जब महावीर स्वामी का जीव स्वर्ग से च्युत होकर मध्यलोक में आने वाला था तब सौधर्म इन्द्र ने जगत कल्याण की कामना से प्रेरित होकर कुबेर से कहा-

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेश में कुण्डपुर नगर के राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं..... ऐसे उन राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी के शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा जिसके चरणों



में इन्द्र भी नमन करेंगे। अतएव हे कुबेर! इन दोनों के निवास भवन को स्वर्णमयी, कान्तिमान व देवों की लक्ष्मी के विलासयोग्य बना दो। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने कुण्डलपुर को ऐसा ही सुन्दर बना दिया।

इसी प्रकरण में आगे देखें-

पहुपंगणि तेत्थु वंदिय चरम जिणिंदें, छम्मास विरइय रयणविट्ठि जक्खिंदें।।७।।

अर्थात् ऐसे उस राजभवन के प्रांगण में अंतिम तीर्थंकर की वन्दना करने वाले उस यक्षों के राजा कुबेर ने यह मास तक रत्नों की वृष्टि की।

माणिक्यचन्द्र जैन बी.ए. खंडवा निवासी ने सन् १९०८ में लिखी गयी अपनी पुस्तक LIFE OF MAHAVIRA(महावीर चरित्र) में कुण्डलपुर के विषय में निम्न निष्कर्ष दिए हैं-

1. The Description of the magnificence of his palace; the ceremonious rejoicings with which the birth of Mahavira was celebrated and the grandevr and pomp of his court; make us belive that Siddhartha was a powerful monarch of his time and his metropolis; Kundalpura; a big populour city. [Pg. 14-15]

"महाराजा सिद्धार्थ के महल की भव्यता, महावीर के जन्म पर बनाई गई खुशियाँ एवं उनके राजदरबार के वैभव का वर्णन हमें इस तथ्य के लिए विश्वस्त कर देते हैं कि सिद्धार्थ अपने समय के शक्तिशाली राजा था और उनका महानगर "कुण्डलपुर एक बड़ा घनी जनसंख्या वाला नगर था। (पृ. १४.१५)

2. As to the birthplace of Mahavira; it is probable but not certain; as Dr. Hoernle suggests; that the Jaina tradition which represents Kundalpura as a large town may be correct; in as much as Kundalpura is taken as equivalent to Vesali [Sanscrit Vaishali]. His puts his birthplace of Kollaga; another sub of Vesali.....

उपर्युक्त कथन के द्वारा लेखक श्रीमाणिक्यचन्द्रजी ने एक विदेशी विद्वान् के द्वारा वैशाली के एक स्थान "कोलागा" को भगवान महावीर का जन्मस्थान कहने पर अपना तर्क प्रस्तुत किया है कि "कोलागा" को महावीर की जन्मभूमि मानना बिल्कुल आवश्यक एवं निराधार है क्योंकि "कुण्डलपुर" उनका जन्मस्थान

निर्विवादित सत्य है जैसाकि उन्हीं के शब्दों में देखें-

Both the Digambaras and Shvetambaras assert that Kundalpura was the place where He was born. [Page 17]

अर्थात् दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही एकमत से कुण्डलपुर को ही महावीर स्वामी की जन्मभूमि मानते हैं।

उन्होंने अपनी इसी पुस्तक में "महावीरपुराण" का संदर्भ देते हुये कुण्डलपुर को एक बड़े शहर के रूप में स्वीकार किया है-

अर्थात् कुण्डलपुर शहर एक बड़ी राजधानी के रूप में सर्वतोमुखी मान्यता का केन्द्र रहा है क्योंकि राजा चेटक अपनी पुत्री त्रिशला जैसी तीर्थंकरजन्मदात्री कन्या का विवाह किसी छोटे-मोटे जमींदार से तो कर नहीं देते बल्कि अपने समान अथवा अपने से भी उच्चस्तरीय राजघराने में ही करते। इसी बात को LIFE OF MAHAVIRA में बताया है।

All these remarks go th show that Siddharthal; if not a powerful monarch; exercised; at least; a kingly authority; if not more to that of Chetaka. [Page 16]

ये कतिपय प्रमाण यहाँ महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर से संबंधित दिए गए हैं अब महावीर के ननिहाल "वैशाली" के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए-

१. वीरजिणिंदचरिउ ग्रन्थ की पाँचवी सन्धि (पृ.६०) में श्रीपुष्पदंत महाकवि कहते हैं कि राजा श्रेणिक ने समवसरण में गौतम गणधर सवे पूछा है कि हे भगवन् ! मुझे उस आर्यिका चन्दना का चरित्र सुनाइये जिसके शरीर में चन्दन की सुगन्ध है तथा जिसने मिथ्यात्वरूपी अंधार को दूर कर दिया है। राजा के इस प्रश्न को सुनकर गौतमस्वामी ने कहा है कि श्रेणिक! मैं चन्दना का वृत्तांत कहता हूँ सो सुनो-

सिन्धु-विसई वइसाली-पुरवरि। घर-सिरि-ओहामिय-सुर-वर-घरि।।
चेडउ णाम णरेसरु णिवसइ। देवि अखुद्द महासई।।

अर्थात् सिन्धुविषय (नदी प्रधान विदेह नामक प्रदेश) में वैशाली नामक नगर है जहाँ के घर अपनी शोभा से देवों के विमानों की शोभा को भी जीतते हैं। उस नगर में चेटक नामक नरेश्वर निवास करते हैं।

उनकी महारानी महासती सुभद्रा से उनके धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, शिवदत्त,



हरिदत्त, कम्बोज, कम्पन, प्रयंग, प्रभंजन और प्रभास नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए।

उनकी अत्यन्त रूपवती सात पुत्रियाँ भी हुईं, जिनके नाम हैं-प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभादेवी, प्रभावती, चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना। इनमें से प्रियकारिणी (त्रिशला) का विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कुण्डलपुर नरेश सिद्धार्थ के साथ कर दिया गया।

इसी प्रकार उत्तरपुराण के ७५वें पर्व में वर्णन आया है-

सिंध्वाख्ये विषये भूभृद्वैशाली नगरेभवत्।
चेटकाख्योतिविख्यातो विनीतः परमार्हतः।।३।।

इस ग्रन्थ में भी राजा चेटक के दश पुत्र एवं सात पुत्रियों का कथन करते हुए ग्रन्थकार ने कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ का वर्णन किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सहज समझा जा सकता है कि विहार प्रान्त में कुण्डलपुर और वैशाली दोनों अलग-अलग राजाओं के अलग-अलग नगर थे तथा कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ एवं वैशाली के राजा चेटक का अपना-अपना विशेष अस्तित्व था। अतः एक-दूसरे के अस्तित्व को किसी की प्रदेश सीमा में गर्भित नही किया जा सकता है।

*कुछ व्यवहारिक तथ्य-*

१. किसी भी कन्या का विवाह हो जाने पर उसका वास्तविक परिचय ससुराल से होता है न कि मायके (पीहर) से।
२. उसकी सन्तानों का जन्म भी ससुराल में ही होता है। हाँ! यदि ससुराल में कोई विशेष असुविधा हो या सन्तान का जन्म वहाँ शुभ न होता हो तभी उसे पीहर में जाकर सन्तान को जन्म देना पड़ता है।
३. पुत्र का वंश तो पिता के नाम एवं नगर से ही चलता है न कि नाना-मामा के वंश और नगर से उसकी पहचान उचित लगती है।

इन व्यवहारिक तथ्यों से महावीर की पहचान ननिहाल वैशाली ओर नाना चेटक से नहीं किन्तु पिता की नगरी कुण्डलपुर एवं पिता श्री सिद्धार्थ राजा से ही मानना शोभास्पद लगता है। अपना घर एवं नगर भले ही छोटा हो किन्तु महापुरुष दूसरे की विशाल सम्पत्ति एवं नगर से अपनी पहचान बनाने में गौरव नहीं समझते हैं।

*फिर वैशाली के दश राजकुमार किनके उत्तराधिकारी बने?*

जैन ग्रन्थों के पौराणिक तथ्यों से यह नितान्त सत्य है कि राजा चेटक के

दस पुत्र एवं सात पुत्रियाँ थीं। इनमें से पाँच पुत्रियों के विवाह एवं दो के दीक्षाग्रहण की बात भी सर्वविदित है। किन्तु यदि तीर्थंकर महावीर को वैशाली के राजकुमार या युवराज के रूप में माना गया तो राजा चेटक के दशों पुत्र अर्थात् महावीर के सभी मामा क्या कहलाएंगे? क्या वे कुण्डलपुर के राजकुमार कहे जाएंगे?

यह न्यायिक तथ्य भी महावीर को कुण्डलपुर का युवराज ही स्वीकार करेगा न कि वैशाली का। अतः कुण्डलपुर के राजकुमार के रूप में ही महावीर का अस्तित्व सुशोभित होता है।

*अपनी शोध सामग्री छोड़कर दूसरे उधार लिए गए साक्ष्यों पर विश्वास क्यों करें?*

महावीर के पश्चात् जैनशासन दो हजार वर्षों से दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो परम्पराओं में विभक्त हो गया यद्यपि यह एक ऐतिहासिक सत्य है तथापि आज भी दिगम्बर जैनधर्म के अतिप्राचीन प्रमाण मौजूद हैं जिनमें महावीर का जन्मस्थान कुण्डलपुर ही माना गया है और उन तथ्यों के आधार पर तीर्थंकर के जन्म से पूर्व १५ माह तक रत्नवृष्टि हो सकती है। पुनः जहाँ रत्नवृष्टि हुई है, भगवान का जन्म तो उसी घर में मानना पड़ेगा अतः "महावीर का जन्म त्रिशला माता की कुक्षि से कुण्डलपुर में ही हुआ था" यह दृढ़ श्रद्धान रखते हुए कुण्डलपुर को विकास और प्रचार की श्रेणी में अवश्य लाना चाहिए।

कुण्डलपुर के विषय में वर्तमान अर्वाचीन (दूसरे साहित्य के अनुसार) शोध का महत्व दर्शाते हुए यदि दिगम्बर जैन ग्रंथों की प्राचीन शोधपूर्ण वाणी को मद्देनजर करके वैशाली को महावीर जन्मभूमि के नाम से माना जा रहा है तो अन्य ग्रन्थानुसार महावीर के दूसरा भाई, महावीर का विवाह, जन्म से पूर्व उनका गर्भपरिवर्तन आदि अनेक बातें भी हमें स्वीकार करनी चाहिए किन्तु शायद इन बातों का कोई भी दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। अतः हमारा अनुरोध है कि अपनी परमसत्य जिनवाण को आज के थोथे शोध की बलिवेदी पर न चढ़ाकर संसार के समक्ष उन्हीं प्राचीन दि. जैन ग्रन्थों के दस्तावेज प्रस्तुत करना चाहिए। कुल मिलाकर दिगम्बर होकर दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों को छोड़कर अन्य प्रमाणों से झूठी प्रामाणिकता सिद्ध करें, यह बात कुछ समझा में नहीं आती है। वैशाली का विकास हो किन्तु महावीर जन्मभूमि के नाम से नहीं-



जहाँ जिस क्षेत्र में तीर्थंकर जैसे महापुरुषों के जन्म होते हैं वहाँ की तो धरती ही रत्नमयी और स्वर्णमयी हो जाती है अतः वहाँ दूर-दूर तक यदि उत्खनन में कोई पुरातत्व सामग्री प्राप्त होती रहे तो कोई अतिशयोक्ति वाली बात नहीं है अर्थात् महावीर के ननिहाल वैशाली में यदि कोई अवशेष मिले हैं तो वे जन्मभूमि के प्रतीक न होकर यह पौराणिक तथ्य दर्शाते हैं कि तीर्थंकर महावीर के अस्तित्व को वैशाली में भी उस समय मानकर उनके नाना-मामा सभी गौरव का अनुभव करते हुए सिक्के आदि में उनके चित्र उत्कीर्ण कराते थे तभी वे आज पुरातत्व के रूप में प्राप्त हो रहे हैं।

दिगम्बर परम्परानुसार तीर्थंकर तो अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र ही होते हैं अर्थात् उनके कोई भाई नही होता अतः माता-पिता के स्वर्गवासी होने के पश्चात् कुण्डलपुर की महिमा वैशाली में महावीर के मामा आदि जातिबन्धुओं ने प्रसारित कर वहाँ कोई महावीर का स्मारक भी बनवाया हो तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है। अतः संभव है कि उस स्मारक के अवशेष वहाँ मिल रहे हों।

वर्तमान में भी यदि वैशाली जनसामान्य के आवागमन की सुविधायुक्त नगर है तो वहाँ महावीर स्वामी का स्मारक आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र बन सकता है किन्तु विद्वानों को उपर्युक्त विषयों पर गहन चिन्तन करके ऐसा निर्णय लेना चाहिए कि प्राचीन सिद्धान्त धूमिल न होने पावें और भगवान महावीर के २६०० वें जन्मजयन्ती महोत्सव मनाने के साथ ही जैनसमाज के द्वारा कोई ऐसा विवादित कार्य न हो जावे कि महावीर की असली जन्मभूमि "कुण्डलपुर" ही विवाद के घेरे में पड़कर जन्मभूमि के सौभाग्य से वंचित हो जावे।

*महावीरकालीन कुण्डलपुर को शहर की एक कालोन नहीं कह सकते*

तीर्थंकर भगवान की जन्मनगरी में साक्षात् सौधर्म इन्द्र एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर बैठकर आता है और वहाँ भारी प्रभावना के साथ जन्मकल्याणक महोत्सव मनाता है अतः उस नगरी का प्रमाण साधारण नगरियों के समान न मानकर अत्यन्त विशेष्ज्ञ नगरी मानना चाहिए।

जैसाकि शास्त्रों में वर्णन भी है कि तीर्थंकर की जन्मनगरी को उनके जनम से पूर्व स्वर्ग से इन्द्र स्वयं आकर व्यवस्थित करते हैं। जिस कुण्डलपुर को स्वयं इन्द्रों

ने आकर बसाया हो उसके अस्तित्व को कभी नकारा नहीं जा सकता है तथा उसके अन्तर्गत अन्य नगरों का मानना तो उचित लगता है, न कि अन्य नगरियों के अन्तर्गत दिल्ली शहर की एक कालोनी की भाँति "कुण्डलपुर" को मानना चाहिए।

कालपरिवर्तन के कारण लगभग २५०० वर्षों बाद उस कुण्डलपुर नगरी की सीमा भी यदि पहले से काफी छोटी हो गई हो तो भी उसके सौभाग्यमयी अस्तित्व को नकार कर किसी बड़े नगर का महावीर जन्मभूमि का दर्जा प्रदान कर देना उसी तरह अनुचित लगता है कि जैसे हमारा पुराना घर यदि आगे चलकर गरीब या खण्डहर हो जाये तो किसी पड़ोसी बड़े जमींदार के घर से अपने अस्तित्व की पहचान बनाना।

अभिप्राय यह है कि सर्वप्रथम तो महावीर की वास्तविक जन्मभूमि कुण्डलपुर नगरी का जीर्णोद्धार विकास आदि करके उसे खूब सुविधा सम्पन्न करना चाहिए अन्यथा उसे विलुप्त करने का दुस्साहस तो कदापि नहीं होना चाहिए।

यदि ५० वर्ष पूर्व समाज के वरिष्ठ लोगों ने सूक्ष्मता से दिगम्बर जैन ग्रन्थों का आलोढन किए बिना कोई गलत निर्णय ले लिया तो क्या प्राचीन सिद्धान्त आगे के लिए सर्वथा बदल दिए जाएँगे?

मेरी तो दिगम्बर जैन धर्मानुयायियों के लिए इस अवसर पर विदेश प्रेरणा है कि यदि इसी तरह निराधार ओर नए इतिहासविदों के अनुसार प्राचीन तीर्थों का शोध चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब अपने हाथ से कुण्डलपुरी, पावापुरी, अयोध्या, अछिच्छत्र आदि असलीतीर्थ निकल जाएँगे क्योंकि आज तो बिजौलियो (राज.) के लोग अछिच्छत्र तीर्थ को अस्वीकार करके बिजौलियों में भगवान पार्श्वनाथ का उपसर्ग होना मानते हैं। उसी प्रकार सन् १९९३ में एक विद्वान अयोध्या में एक संगोष्ठी के अन्दर वर्तमान की अयोध्या नगरी पर ही प्रश्नचिन्ह लगाकर उसे अन्यत्र विदेश की धरती पर बताने लगे तब पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने उन्हें यह कहकर समझाया था कि शोधार्थी विद्वानों को इतना भी शोध नहीं करना चाहिए कि अपनी माँ पर ही संदेह की सुई टिकने लगे अर्थात् तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी एवं परम्पराचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को सन्देह के घेरे में डालकर या उन्हे झूठा ठहराकर लिखे गए शोध प्रबंध हमें मंजूर नहीं हैं।



*शोध का अर्थ क्या है?*

मुझे समझ में नहीं आता कि अपनी प्राचीन मूल परम्परा पर कुठाराघात करके अर्वाचीन ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करना ही क्याशोध की परिभाषा है? वैशाली कभी भी सर्वसम्मति से महावीर की जन्मभूमि के रूप में स्वीकार नहीं की गई क्योंकि अनेक साधु-साध्वी इस विषय से सन् १९७४ में भी असहमत थे और आज भी असहमत हैं। यदि इस जन्मजयन्ती महोत्सव पर वैशाली को "महावीरस्मारक" के रूप में विकसित किया जाता है तब तो संभवतः किसी साधु-साध्वी, विद्वान् अथवा समाज का प्रबुद्धवर्ग उसे मानने से इंकार नहीं करेगा किन्तु महावीर की जन्मभूमि वैशाली के नाम पर अधिकांश विरोध के स्वर गूंजेंगे।

इस विषय में चिन्तन का विषय यह है कि यदि दिगम्बर जैनसमाज के ही लोग अपने प्राचीन आगम के प्रमाण छोड़कर दूसरे ग्रन्थों एवं अर्वाचीन इतिहासज्ञों के कथन प्रामाणिक मानने लगेंगे तो उन पूर्वाचार्यों द्वारा कथित आगम के प्रमाण कौन सत्य मानेंगे? इस तरह तो "प्राचीनभारत" पुस्तक में इतिहासकार प्रो. रामशरण शर्मा द्वारा लिखित जैनधर्म के लिए मिथक कथाओं का गढ़ा जाना आदि बातें भी सत्य मानकर जैनधर्म को भगवान महावीर द्वारा संस्थापित मानने में भी हमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए? यदि सन् १९७२ में लिखे गए उस कथन का जम आज विरोध कर उसे पूर्ण असंगत ठहराते हैं तो वैशाली को महावीर की जन्मभूमि कहने पर भी हमें इतिहास को धूमिल होने से बचाने हेतु गलत कहना ही पड़ेगा अन्यथा अपने हाथों से ही अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने के अतिरिक्त कोई अच्छा प्रतिफल सामने नहीं आएगा।

हम तो शोध का अर्थ यह समझाते हैं कि अपने मूल इतिहास एवं सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुये वर्तमान को प्राचीनता से परिचित कराना चाहिए। वैशाली में न तो महावीर स्वामी का कोई प्राचीन मंदिर है और न ही उनके महल आदि की कोई प्राचीन इमारत मिलती है, केवल कुछ वर्ष पूर्व वहाँ "कुण्डग्राम" नाम से एक नवनिर्माण का कार्य शुरू हुआ है। जैसा कि पण्डित बलभद्र जैन ने भी "भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ" (बंगाल-बिहार-उड़ीसा के तीर्थ) नामक ग्रन्थ में (सन् १९७५ में हीराबाग-बम्बई से प्रकाशित) कुण्डलपुर तीर्थ के विषय में लिखा है-

"कुण्डलपुर बिहार प्रान्त के पटना जिले में स्थित है। यहाँ का पोस्ट

आफिस नालन्दा है और निकट का रेलवे स्टेशन भी नालन्दा है। यहाँ भगवान महावीन के गर्भ, जन्म और तपकल्याणक हुए थे, इस प्रकार की मान्यता कई शताब्दियों से चली आ रही है। यहाँ पर एक शिखरबन्द मंदिर है जिसमें भगवान महावीर की श्वेतवर्ण की साढ़े चार फुट अवगाहन वाली भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। वहाँ वार्षिक मेला चैत्र सुदी १२ से १४ तक महावीर के जन्मकल्याणक को मनाने के लिए होता है।"

कुण्डलपुर या कुण्डपुर को कुण्डग्राम कहकर वैशाली साम्राज्य की एक शासित इकाई मानते हुए क्या हमारे कुछ विद्वान् राजा सिद्धार्थ को चेटक राजा का घरजमाई जैसा तुच्छ दर्जा दिलाकर उन्हें वैशाली के ही एक छोटे से मकान का गरीब श्रावक सिद्ध करना चाहते हैं? क्या तीर्थंकर के पिता का कोई विशाल अस्तित्व उन्हें अच्छा नहीं लगता है?

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी इस विषय में बतलाती हैं कि सन् १९७४ में महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाणमहोत्सव के समय पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर महाराज, आचार्य श्री देशभूषण महाराज, पण्डितप्रवर सुमेरचन्द जैन दिवाकर, पंडित मक्खनलाल शास्त्री, डा. लाल बहादुर शास्त्री-दिल्ली, पं. मोतीचंद कोठारी-फलटण आदि अनेक विद्वानों से चर्चा हुई तो सब एक स्वर से कुण्डलपुर वर्तमान तीर्थक्षेत्र को ही महावीर जन्मभूमि के रूप में स्वीकृत करते, वैशाली किसी को भी जन्मभूमि के रूप में इष्ट नहीं थी।

*जरा चिन्तन कीजिए!*

उदारहण के तौर पर गणिनी श्री ज्ञानमती का जन्म उत्तर प्रदेश के टिकैतनगर (जिला बाराबंकी) ग्राम में हुआ है और उनके द्वारा हुई व्यापक धर्मप्रभावना के कार्य दिल्ली, हस्तिनापुर आदि में हुए हैं। आगे चलकर सौ-दो सौ वर्ष पश्चात् कोई शोधकर्ता इन स्थानों पर कुछ साक्ष्य पाकर टिकैतनगर की बजाए हस्तिनापुर, दिल्ली आदि माताजी का जन्मस्थान मान ले तो तो क्या उसे सच मान लिया जाएगा? अर्थात् उन स्थानों को माताजी की कर्मभूमि तो माना जा सकता है किन्तु जन्मभूमि तो जन्म लिए हुए स्थान को ही मानना पड़ेगा।

इसी प्रकार कुछ पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर "वैशाली" को महावीर



जन्मभूमि के नाम से मान्यता नहीं दिलाई जा सकती है अतः विद्वान् आचार्य, साधु-साध्वी सभी गहराई से चिन्तन कर कुण्डलपुर की खतरे में पड़ी अस्मिता की रक्षा करें।

*जन्मभूमि के बाद निर्वाणभूमि की भी बारी आने वाली है!*

वर्तमान की बुद्धिजीवी पीढ़ी ने महावीर स्वामी की कल्याणक भूमियों के भ्रामक प्रचार का मानो ठेका ही ले लिया है। इसे शायद पंचमकाल या हुण्डावसर्पिणी का अभिशाप ही कहना होगा कि महावीर स्वामी की जन्म एवं निर्वाण दोनों भूमियों को विवादित कर दिया गया है।

पच्चीस सौ सत्ताइस वर्षों पूर्व बिहार प्रान्त की जिस पावापुरी नगरी से महावीर ने मोक्षपद प्राप्त किया वह आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है और प्रत्येक दीपावली पर वहाँ देश भर से हजारों श्रद्धालु निर्वाणलाडू चढ़ाने पहुँचते हैं। जैसा शास्त्रों में वर्णन आया है बिल्कुल उसी प्रकार की शोभा से युक्त पावापुरी का सरोवर आज उपलब्ध है और उसके मध्यभाग में महावीर स्वामी के अतिशयकारी श्रीचरण विराजमान हैं और फिर भी कुछ विद्वान् एवं समाजनेता गोरखपुर (उ.प्र.) के निकट सठियावां ग्राम के पास एक "पावा" नामक नगर को ही महावीर की निर्वाणभूमि पावा सिद्धक्षेत्र मानकर अपने अहं की पुष्टि कर रहे हैं।

इस तरह की शोध आदि अपने तीर्थ और शास्त्रों के प्रति चलती रही तब तो सभी असली तीर्थ एवं ग्रन्थों पर प्रश्नचिन्ह लग जाएँगे तथा जैनधर्म की वास्तविकता ही विलुप्त हो जाएगी। पावापुरी के विषय में भी अनेक शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध हैं किन्तु यहाँ विषय को न बढ़ाते हुये केवल प्रसंगोपात्त जन्मभूमि प्रकरण को ही प्रकाशित किया गया है सो विज्ञजन स्वयं समझें एवं दूसरों को समझावें।

# वैशाली भी तो असली वैशाली नहीं है

**-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर**

जैनशास्त्रों के अनुसार सिन्धुदेश में "वैशाली" नगरी का वर्णन आता है। वहां राजा केक के पुत्र "चेटक" राज्य करते थे। श्रीगुणभ्रदाचार्य ने उत्तरपुराण ग्रन्थ में लिखा है-

"सुरलोकादभूः सोमवंशे त्वं चेटको नृपः।"

अर्थात् स्वर्गलोक से आकर वैशाली के "सोमवंश" में राजा चेटक ने जन्म लिया था। उन्हीं की सात पुत्रियों में से सबसे बड़ी पुत्री "त्रिशला" का विवाह विदेहदेश की कुण्डलपुर नगरी के राजा "सिद्धार्थ" के साथ हुआ था।

धर्मप्रेमी बन्धुओं! दिगम्बर जैन आगमग्रन्थों के अनुसार यह निश्चित है कि आज से छब्बिस सौ वर्ष पूर्व वैशाली और कुण्डलपुर दोनों ही नगरियां अत्यन्त समृद्ध और राजघरानों से पहचानी जाती थीं किन्तु २६ शताब्दियों के इस अन्तराल के मध्य विश्व के समस्त देश और प्रदेशों में बड़े-बड़े परिवर्तन आए जिससे बड़े-बड़े देश आज छोटे-छोटे प्रदेश के रूप में परिवर्तित हो गए। इन परिवर्तनों के बावजूद भी इन्द्र के द्वारा बसाई गई कुछ नगरियां जैसे-अयोध्या, सम्मेदशिखर, बनारस, हस्तिनापुर, श्रावस्ती आदि का अस्तित्वकाल भी समाप्त नहीं कर पाया। यही कारण है कि हम सभी उन तीर्थभूमियों पर जाकर तीर्थंकरों के कल्याणक भी वन्दना करते हैं।

यहां हमें "वैशाली" के विषय पर सूक्ष्मता से अवलोकन करना है कि जिस विदेहदेश में कुण्डलपुर नगरी का अस्तित्व बताया गया है वह तो बिहार प्रान्त के नाम से जाना जाता है किन्तु सिन्धुदेश की खोज आत तक नहीं हो सकी है। एक ही बिहारप्रान्त में विदेह और सिन्धु दोनों देशों की कल्पना कदापि उचित प्रतीत नहीं होती है।

कुछ आधुनिक विद्वानों ने सिन्धुदेश की जगह सिन्धु नदी का सम्बन्ध जोड़कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बिहार में मुजफ्फरपुर के पास वैशाली नगर होना चाहिए। कुछ शोधकर्ता विद्वानों ने-डॉ. हीरालाल एवं ए.एन. उपाध्ये ने स्वयं यह बात लिखी है कि "अनेक प्राचीन नगरों के साथ इस वैशाली का दीर्घकालीन



इतिहासज्ञों को अता-पता ही नहीं था किन्तु विगत एक शताब्दी के मध्य शोध-खोज के आधार पर मुजफ्फरपुर के पास "बसाढ़" नामक ग्राम को "वैशाली" नाम दे दिया गया हैं।

इससे सिद्ध होता है कि समय-समय पर ग्राम, नगर, शहर, उद्यान एवं शिक्षणसंस्थान आदि के नामकरण एवं नाम परिवर्तन की परम्परा पुरानी रही है। उसी क्रम में जिस प्रकार दिल्ली के निकट वैशाली, कौशाम्बी नामकी बहुत बड़ी-बड़ी कॉलोनियां पिछले एक दशक में निर्मित हुई हैं, उसी प्रकार लगभग ५० वर्ष पूर्व बिहारप्रदेश में "वैशाली" नामक उपनगर की स्थापना हुई है। इसको छब्बीस सौ वर्ष पूर्व की ऐतिहासिक वैशाली नगरी न कहकर वर्तमान की वैशाली ही मानना चाहिए। यहां पर यह भी कहना अनुचित न होगा कियदि हमें वैशाली का उन्नतरूप वर्तमान में दर्शाना ही है तो राजधानी दिल्ली वाली वैशाली कॉलोनल में वह महावीरकालीन रूपक दर्शाना चाहिए क्योंकि वह कॉलोनी जमना नदी के पार होने से नदी की निकटता भी वहां प्राप्त हो रही है। शोध और खोजकर्ताओं को अब अविलम्ब दिल्ली की इसी वैशाली का पुनरुत्थान करने की सलाह जैनसाज के लिए देना चाहिए, राजधानी की निकटता इसे शीघ्र ही गगनचुम्बी ख्याति प्राप्त कराने में सहायक बनेगी और जैनसमाज के इशारे पर भारतसरकार भी बिहारप्रान्त की अपेक्षा दिल्ली में अधिक आर्थिक सहयोग और मान्यता प्रदान करेगी।

*कब जागेगी जैन समाज?*

समाज के प्रबुद्ध नागरिकों! जैनशासन की अस्मिता को बचाने हेतु अब सभी को सचेत होना आवश्यक है वरना आप मंदिर में पूजा-पाठ करते रहेंगे और बाहरी संसार में अनादि जैनशासन पर निरंतर कुठाराघात होकर एक दिन मरणासन देखने को मजबूर होना पड़ेगा। यू तो धर्म की व्याख्या इतनी व्यापक है कि तीनों लोकों का सम्पूर्ण सुख उसमें समा जाने की क्षमता है तथापि काल के थपेड़ों में पड़कर जब-जब धर्म का ह्रास हुआ है तब-तब किसी न किसी महापुरुष ने जन्म लेकर उसका पुररुद्धार किया है। तभी सतयुग से लेकर वर्तमान के कलियुग तक भारत की धरती पर जैनधर्म का एक और उसके सिद्धान्तों का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है किन्तु ईसवी सनू की बीसवीं सदी के इतिहासकारों ने इस धर्म के प्रति एवं इसे प्रवर्तित करने वाले तीर्थंकर महापुरुषों के प्रति अपनी

लेखनी के द्वारा जिस प्रकार अनभिज्ञता एवं द्वेषभाव का परिचय दिया है वह अब सहन करना अपने जैनत्व पर प्रश्नचिन्ह लगाना है।

विद्वत् शिरोमणि, पंप्रवर श्री सुमेरुचन्द्र जैन दिवाकर ने उस समय भी चल रही अनर्गल शोधपरम्परा से दुखी होकर ही शायद "जैनशासन", जोकि सन १९४७ तथा १९५० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा एवं सन् १९९८ में प्राच्यश्रमणभारती-मुजफ्फरनगर द्वारा प्रकाशित है, के पृ. २२२-२२३ पर लिखा है-

"भगवान महावीर के जीवन का इतिहास और उनके त्याग की अमर कहानी बिहारप्रान्त के पावापुर ग्राम में विद्यमान सरोवरस्थ धवल जिनमंदिर में मिलती है। भगवान महावीर ने ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व कुण्डलपुर में क्षत्रियशिरोमणि महाराजा सिद्धार्थ के यहां माता त्रिशला के उदर से जन्म लिया था। वे नाथवंश के भूषण थे। संसार के भोगों में उनका विवेकपूर्ण मन न लगा अतः बालब्रह्मचारी रहकर उन्होंने ३० वर्ष की अवस्था में निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण कर १२ वर्ष तपश्चर्या कर ४२ वर्ष की अवस्था में कैवल्य प्राप्त किया और विश्वहितकर धर्म का उपदेश ३० वर्ष तक देकर ७२ वर्ष तक की अवस्था में परमनिर्वाण-मुक्ति प्राप्त की। प्रभु के चारित्र को विकृत करते हुये श्री शें.रा. राजवाड़े ने नादसीय सूक्त के भाष्य-पूर्वार्ध में पृ. १८६ पर भगवान के नाथवंश को नटवंश मान उन्हें नटपुत्र कहने की असत् चेष्टा की है और लिखा है-गौतम व महावीर हे दीघे क्षत्रिय व्रात्य होते, कारण महावीरा 'नातपुत्त' म्हटला आहे व गौतमाचा जन्म लिच्छवी कुलांत झाल आहे। नातपुत-नटपुत्त नट व लिच्छवी हीं दोन्हीं कुलें मनूनें व्रात्य-क्षत्रिय म्हणून उल्लेखिलीं आहेत।

खेद है कि अपने सम्प्रदाय के मोहवश मनुष्य सत्य का अपलाप करते हुए लज्जित नहीं होता। हरिवंशपुराण में भगवान के पिता महाराजसिद्धार्थ को प्रतापी भूप बताया है-

"सिद्धार्थो भवदर्काभो भूपः सिद्धार्थपौरुषः। सर्ग २-१३

वास्तव में ऐसे आगमनिष्ठविद्वानों के द्वारा रचितशास्त्रों से ही हमें अपनी असली विरासत और निराधार आगमविरुद्ध शोध-खोज की पोलें ज्ञात हो सकती हैं इसके विपरीत जिन विद्वानों ने किसी संस्थाविशेष या श्रेष्ठी आदि की



मनोभावनापूर्ति हेतु लेखन किया है उनकी रचनाओं में स्पष्ट दुराग्रह और आगमविरुद्धता के स्वर गूंजते नजर आते हैं।

*आखिर वास्तविकता कभी न कभी तो सामने आती ही है*

बन्धुवर! आपको कुछ वास्तविक तथ्यों से परिचित होना परम आवश्यक है। हमने पिछले कई वर्ष और महीनों से जब-जब वैशाली से जुड़े विद्वानों से वार्तालाप किया तो उन लोगों से भी यही तथ्य सुना कि हम "महावीर को वैशाली के राजकुमार" के रूप में कभी स्वकार ही नहीं कर सकते हैं। उनका कहना है कि वैशाली बिल्कुल अलग स्थान है और वहां से ३ किमी. दूर मुजफ्फरपुर जिले के एक ग्राम को महावीर की जन्मभूमि बनाया गया है जिसे वासोकुण्ड या कुण्डग्राम के नाम से जाना जा रहा है। पहली बात तो इसमें चिन्तन करने की यह है कि सदियों की परम्परानुसार जब "कुण्डलपुर" नालन्दा-बिहार महावीर जन्मभूमि के रूप में जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र था तो दूसरे स्थान को ढूंढने की आवश्यकता क्यों पड़ी? उस परिवत्रस्थल के प्रति शंका के चिन्ह क्यों उभरे? उन्हें आगम का ज्ञान नहीं था? दूसरी बात यह है कि जब वैशाली ढूंढी गई तो उसे महावीर की जन्मभूमि क्यों कहा गया? जबकि महावीर के साथ "कुण्डलपुर अवतारी" विशेषण जुड़ा रहा है। और वैशाली माता त्रिशला की जन्मभूमि के रूप में पहचानी जाती रही है।

इस स्थिति में यदि शोधकर्ताओं के अनुसार नाम देना ही था तो खुले रूप में उसका नाम मात्र "कुण्डलपुर" रखा जाता और वैशाली किसी दूसरे प्रदेश में बसाई जाती तब तो शायद कुछ श्रद्धा भी वहां के लिए उमड़ती। आप स्वयं सोचें कि सिन्धुदेश और विदेहदेश क्या मात्र दो-तीन किलोमीटर के अन्तराल पर रह सकते हैं? वह तो वास्तविक जन्मभूमि कुण्डलपुर से लगभग १५० कि.मी. दूर महावीर की ननिहाल के रूप में फिर भी स्वीकार किया जा सकता है वह भी उसी प्रकार से जैसे वर्तमान में भारत के अन्दर ऋषभदेव भगवान की निर्वाणभूमि कैलाशपर्वत न होने से बद्रीनाथ के पर्वत पर एक संस्थाविशेष द्वारा "अष्टापद" नाम सक एक नया तीर्थ पिछले कुछ वर्षो पूर्व से बना दिया है जहां श्रद्धालु यथाशक्ति दर्शन करने पहुंचते हैं।

वैशाली में राजा चेटक के दस पुत्रों का आधिपत्य था, न कि राजा सिद्धार्थ

या युवराज महावीर का। इस बात की पुष्टि प्राकृतविद्या अक्टूबर-दिसम्बर २००१ के पृष्ठ ३० पर प्रकाशित स्व. पं. बलभद्र जैन के लेख "भगवान महावीर" से भी हो रही हैं प्रस्तुत लेख में लखेक ने एक ओर प्रारम्भ का शीर्षक ही दिया है-"महावीर की जन्मनगरी वैशाली"। इसके अन्दर सभी बौद्ध एवं श्वेताम्बर तथ्यों के आधार पर उन्होंने वैशाली में महावीर का जन्म घोषित किया है पुनः आगे चलकर उसी लेख में पृ. ३४ पर महासती चन्दना द्वारा कौशाम्बी में भगवान महावीर को आहार देकर अपनी बहन मृगावती से मिलन के पश्चात् माता-पिता तक पहुंचने का वर्णन करते हुये लेखक ने दिगम्बर जैन ग्रन्थों का अनुसरण करते हुये लिखा है-

"वहां से उसका भाई सिंहभद्र वैशाली ले गया किन्तु चन्दना को इस अल्पवय में ही संसार का कटु अनुभव हुआ था जिसके कारण उसे संसार से निर्वेद हो गया-अपनी योग्यता के बल पर ३६००० आर्यिकाओं के संघ की गणिनीपद पर प्रतिष्ठित हुई।"

इस सत्यता को ही स्वीकारा कर लेने से महावीर की जन्मभूमि वैशाली भला कैसे हो सकती है? जिस वैशाली में त्रिशला, चन्दना आदि सातों बहनों के और सिंहभद्र आदि दस भाइयों के जन्म हुए उसी वैशाली में अर्थात् ननिहाल में महावीर का जन्म होना कदापि संभव नहीं है। क्योंकि माता त्रिशला ने अपनी ससुराल कुण्डलपुर के नन्द्यावर्त महल में ही तीर्थंकर बालक को जन्म दिया था और वहीं उनके आंगन में पन्द्रह महिने तक रत्नवृष्टि हुई थी। जन्म के पश्चात् महावीर अपने ननिहाल कई बार गए हों, उनका समवसरण वैशाली में जाता रहा हो, इसमें कोई विसंववाद की बात ही नही है। भारत में आए विदेशी यात्रियों के अनुसार बौद्धग्रन्थ घोषित परम्परानुसार वैशाली में हजारों-हजार सोने, चांदी, तांबे के गुम्बद वाले महलों का वर्णन आप यदि सहज में स्वीकार कर सकते हैं तो आपको अपने प्राचीन आगम ग्रन्थानुसार महावीर की असली जन्मभूमि कुण्डलपुर को देवोपुनीत वैभव भी अवश्य जानकर गौरव का अनुभव करना चाहिए। उत्तरपुराणग्रन्थ में स्पष्ट वर्णन आया है कि-

नंद्यावर्तगृहे रत्नदीपिकाभिः प्रकाशिते। रत्नपर्यंकके हंसतिलकादिविभूषते।।२५४।। पृ. ४६०

अर्थ-सात खंड वाले राजमहल के भीतर रत्नमय दीपकों से प्रकाशित



नन्द्यावर्त नामक राजभवन में हंस-तूलिका आदि से सुशोभित रत्ननिर्मित पलंग पर रानी त्रिशला सो रही थीं। अर्थात् तीर्थंकर भगवान महावीर की माता का तो शयन करने वाला पलंग ही स्वर्ण और रत्ननिर्मित था। रात-दिन स्वर्ग की देवियां उनकी सेवा करती थीं, साक्षात् इन्द्र और देवगण भगवान के समक्ष किंकर बने खड़े रहते थे, शचि इन्द्राणी स्वयं गुप्तवेश बनाकर माता की सेवा और रक्षा में संलग्न रहती थी तथा जिस नगरी में लगातार १५ महिने तक प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ रत्नों की मोटी धारा स्वयं धनकुबेर आकर बरसाता था उस कुण्डलपुर नगरी की समृद्धता तो शब्दों में वर्णित भी नहीं की जा सकती है।

आज छब्बिस सौ वर्षों के बाद न तो कुण्डलपुर में वह वैभव दिखता है और न ही आज की स्थापित वैशाली-वसाढ़ में कुछ अवशेष दिखते हैं अतः वैशाली तो अब केवल खोज का विषय है और कुण्डलपुर अपने सौभाग्य को पुनः प्राप्त करने की इंतजार कर रहा है।

*क्या पावापुरी अब मध्यमापावा के रूप में स्वीकृत होचुकी है?*

पाठकों! जन्मभूमि वैशाली को मान्यता देने वाले विद्वान् महावीर की निर्वाणभूमि को अब तक जो मज्झिमा पावा-फाजिलनगर, गोरखपुर, उ.प्र. के निकट पावाग्राम को मानते आए हैं। प्राकृतविद्या के पिछले अंकों में महावीर निर्वाणभूमि के नाम को "मध्यमा पावा" के रूप में ही लिखा जाता था किन्तु आश्चर्य हुआ अक्टूबर-दिसम्बर २००१ अंक के पं. बलभद्रजी के ही लेख में पृ. ३७ पर स्पष्ट लिखा है-

"भगवान महावीर ७२ वर्ष की आयु में कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के प्रातःकाल "मज्झिमा पावा" में वर्तमान पावापुरी में कर्मों का नाश करके मुक्त हो गए।"

आखिर वास्तविकता पर तो कभी न कभी सबको आना ही पड़ता है। कुछ लोग अपनी बुद्धि-वैशिष्ट्य का परिचय देने हेतु भूगोल की दलील देने लगते हैं कि मगधदेश में राजगृही नगरी थी तो उसी के इतने नजदीक १८ किमी. दूर पर ही विदेहदेश की कुण्डलपुर नगरी कैसे आ गई?

इस विषय में सबसे पहला ही प्रश्न तो आधुनिक स्थापित वैशाली के प्रति ही उठ जाता है कि सिन्धुदेश की वैशाली नगरी के अन्दर मात्र २ किमी. दूर विदेहदेश का कुण्डग्राम आपने कैसे बना लिया? यदि २ किमी. के अंतराल में दो बड़े राजाओं के देश कलियुगी मानव स्थापित कर सकता है तो सतयुग में मगध और विदेह थोड़ा

पास-पास रहे हों इसमें कौन सी भौगोलिक परिस्थिति बिगड़ गई?

खैर! आधुनिक बुद्धि ने तो आजकल आगमपरम्परा, तीर्थ, पूजनपद्धति आदि में परिवर्तन करते-करते अब सिद्धशिला को ही पलटकर औंधी कर दी है जबकि आगम में अर्धचन्द्र या उत्तान कटोरे के समान सिद्धशिला का आकार माना गया है अतः अपनी-अपनी श्रद्धा ही इसमें प्रधान मानकर एक-दूसरे का विरोध करने की बजाए प्राचीन आचार्य प्रणीत आगम ग्रन्थों का ही सहारा लेना चाहिए।

यह मगध देश के निकट कुण्डलपुर नगरी का अस्तित्व भी आप उत्तरपुराण के निम्न प्रमाण से देखें-

दरनिद्रावलोकिष्ट, विशिष्टफलदायिनः।स्वप्नान् षोडशविच्छिन्नान् प्रियास्य प्रियकारिणी।।२५६।।
तदन्ते पश्यदन्यन्च, गजं वक्त्रप्रवेशिनम्।प्रभातपटहध्वानैः पठितैर्वन्दिमागधैः।।२५७।।पृ.४६०

अर्थात् रात्रि के चतुर्थ प्रहर में त्रिशला ने कुछ खुली सी नींद में सोलह स्वप्न देखे। सोलह स्वप्नों के बाद उसने मुख में प्रवेश करता हुआ एक अन्य हाथी देखा तदन्तर सबेरे के समय बजने वालो नगाड़ों की आवाज से तथा चारण-बन्दीजनों और मगधजनों के द्वारा पढ़े हुए मंगल पाठों से वह जाग उठी।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो रहा है कि कुण्डलपुर के निकट ही मगधदेश था और वहां के मागधीजन भी कुण्डलपुर में रहा करते थे। जैसे-आज भी हमारे भारतदेश में अनेक देशों के लोग भी निवास करते हैं और तमाम देशों का पारस्परिक व्यवहार, व्यापार आदि भी सदैव से ही चलते रहे हैं। शायद उसी परम्परा का अनुसरण करते हुये आज भी कुण्डलपुर के आस-पास के तमाम आदिवासी नागरिक अपने को मगैया कहते हैं और कुण्डलपुर के महावीरप्रभु को अपना परम आराध्य मानते हैं। अन्त में आप सब श्रद्धालु भक्तों को यही प्रेरणा लेना है कि बसाढ़ग्राम में बसाई गई वैशाली को २६०० वर्ष पुरानी वैशाली न मानकर उसे दिल्ली की एक कालोनी की भांति ही समझें और असली वैशाली के खोज का साधन बनाएं एवं महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर के विकास में एकजुट होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का संकल्प कर लें।



# भगवान महावीर के समय गणतंत्र शासन नहीं था

*पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से ब्र. कु. सारिका जैन की*

## एक वार्ता

भगवान महावीर के जीवन से संबंधित अनेक आगमविरुद्ध बातों को पत्र-पत्रिकाओं में पढ़कर मेरे मन में जिज्ञासा हुई कि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी से दिगम्बर जैन आगम के परिप्रेक्ष्य में कतिपय विवादित विषयों का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें समाज के समक्ष प्रस्तुत करूँ अतः मैंने दिनांक ५.१२.०२ को पूज्य माताजी से कुछ प्रश्नों का समाधान प्राप्त किया उसे मैं यहाँ प्रस्तुत कर रही हूँ—

*कु. सारिका*—वंदामि, माताजी!

*पूज्य माताजी*—बोधिलाभोस्तु!

*कु. सारिका*—माताजी! आज मैं आपसे कुछ शंकाओं का समाधान करना चाहती हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें।

*पूज्य माताजी*—बहुत अच्छी बात है, बताओ, क्या शंका हैं?

*कु. सारिका*—पूज्य माताजी! मैंने कई पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा है कि राजा चेटक गणतंत्र शासन के प्रमुख शासक थे, इस विषय में मैं आपसे समझना चाहती हूँ।

*पूज्य माताजी*—वर्तमान में कुछ विद्वान् इस बात को स्वीकार कर रहे हैं और लिख भी रहे हैं कि राजा चेटक गणतंत्र शासन के प्रमुख शासक थे लेकिन दिगम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार यदि देखा जाये तो उस समय गणतंत्र शासन ही नहीं था। आज से २००० वर्ष पूर्व श्रीयतिवृषभाचार्य द्वारा लिखित तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ में मैंने स्वयं पढ़ा है कि—

जिस समय भगवान महावीर ने मोक्ष को प्राप्त किया उस समय "पालक" नाम के अवन्तिसुत का राज्याभिषेक हुआ। ६० वर्ष तक उस पालक राजा ने राज्य किया, उसके बाद विजयवंशियों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया, अनन्तर मुरुंडवंशियों का राज्य ४० वर्ष तक चला, ३० वर्ष तक पुष्यमित्र का राज्य रहा, इसके पश्चात् ६० वर्ष तक वसुमित्र-अग्निमित्र ने राज्य किया, १०० वर्ष गंधर्व ने राज्य किया और नरवाहन ४० वर्ष तक राज्य करते रहे पश्चात् भृत्य आन्ध्र राजा उत्पन्न हुए

हैं, इन भृत्य आन्ध्रों का काल २४२ वर्ष है, इसके बाद गुप्तवंशी हुए, इनका प्रमाणकाल २२१ वर्ष माना जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि यह राज्य परंपरा १००० वर्ष तक चली है तो उससे १००० वर्ष पूर्व राजा चेटक को गणतंत्र का शासक कहना दिगम्बर जैन आगम से तो कथमपि मेल नहीं खाता है। हरिषेणाचार्यकृत वृहत्कथाकोष में लिखा है कि—विशाल नगरी के राजा केक और उनकी रानी यशोमति थीं। उनका पुत्र चेटक था। "अभूत् साधुकृतानंदश्चेटकाख्यः सुतोनयोः।" बौद्धग्रन्थ और श्वेताम्बर ग्रंथों से है। तो अगर हम उनकी एक बात मानते हैं तो हमें उनकी हर एक बात माननी चाहिए। हम उनकी एक बात मान लें गणतंत्र शासन के बारे में, और उनकी दूसरी बातें न मानें ऐसा तो हमें समझ में नहीं आता। दिगम्बर जैन परम्परा के ग्रंथों में तो जो राज्यपरम्परा मानी है कि इतने वर्ष तक उनने राज्य किया फिर उनका राज्याभिषेक हुआ.....तो राज्याभिषेक तो विधिवत् राजाओं का ही होता है इस संबंध में किसी भी दिगम्बर जैन आगम में यह नहीं लिखा है कि पहले वे गणतंत्र शासन में चुने गए फिर उनको राष्ट्रपति बनाया गया।

अतः मेरा तो बार-बार यही कहना है कि दिगम्बर जैन आगम में कहीं भी गणतंत्र शासन का उल्लेख नहीं आया है।

*कु. सारिका*—माताजी! फिर आपकी दृष्टि से लिच्छविवंश की क्या व्यवस्था है?

*पूज्य माताजी*—दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर का वंश नाथवंश माना है तो ये राजा सिद्धार्थ और उनके पिता सर्वार्थ सभी नाथवंशी थे और राजा चेटक का वंश सोमवंश माना गया है जिसका कि मैंने पहले भी प्रमाण दिया है। उत्तरपुराणग्रन्थ में यह बहुत स्पष्टरूप से लिखा है कि सुरलोकादभूःसोम-वंशेत्वं चेटको नृपः अर्थात् सोमवंश में राजा चेटक हुए हैं तो लिच्छविवंश का नाम मुझे तो आज तक दिगम्बर जैन परम्परा के किसी भी ग्रंथ में देखने को नहीं मिला है अतः मैं समझती हूँ कि ये लिच्छविवंश की परम्परा भी श्वेताम्बर ग्रंथों से ही आई है दिगम्बर जैन परम्परा के किसी भी ग्रंथ में यह बात नहीं आई है।

*कु. सारिका*—माताजी! ऐसा कुछ विद्वानों का कहना है कि वैशाली तो बहुत ही समृद्धिशाली नगरी थी उसमें सोने-चाँदी के हजारों गुम्बज थे, इस विषय में आप क्या कहना चाहती हैं?

*पूज्य माताजी*—बात यह है कि वैशाली समृद्ध हो इसमें हमारा कोई विरोध नहीं है क्योंकि राजा चेटक भी एक अच्छे महान राजा थे। उनके दस पुत्र थे और सात पुत्रियां



थीं लेकिन सबसे बड़ी विचारणीय बात यह है कि जिस वंश में, जिस कुल में, जिस घराने में तीर्थंकर भगवान जन्म लेने वाले हैं वह राजा और वह नगरी उससे हीन हो, उससे छोटी हो, उसका एक मोहल्ला हो यह बात दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार कथमपि स्वीकार करने योग्य नहीं है क्योंकि आचार्यों का कहना है कि जिस समय तीर्थंकर अवतार लेने को होते हैं उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर बारह योजन की नगरी बनाता है और अगर वह समृद्धिशाली नगरी रहती ही है राजधानी के रूप में, तो उसे बाग-बगीचों, महल-अटारी से सुसज्जित करके बहुत ही सुन्दर बना देता है उस समय वह नगरी स्वर्ग से भी अधिक सुन्दर बन जाती है तो वह वैशाली का एक मोहल्ला हो या वैशाली के अंतर्गत हो यह समझ में नहीं आता है इसलिए मैं तो क्या अनेक विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि वैशाली कुण्डलपुर से अधिक समृद्धिशाली नगरी थी दूसरी बात एक और भी है कि जहाँ तीर्थंकर भगवान के गर्भ में आने के छह महीने पहले से ही प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ रत्नों की वर्षा होती है वहाँ सोने-चांदी के गुम्बज क्या मायने रखते हैं? उसकी समृद्धि और धनपरायणता के आगे वैशाली बहुत ही छोटी नगरी है। उत्तरपुराण में तो वर्णन आता है कि रानी त्रिशला जिस पलंग पर सोई थी वह पलंग रत्नों का था तो वहाँ कुण्डलपुर के हरेक मकानों पर, महलों पर भी सोने के गुम्बज हों तो बड़ी बात नहीं है, जहाँ इतने रत्नों की वर्षा होती हो और कुबेर जिसको सुसज्जित करने वाला हो उसकी महिमा से अधिक वैशाली की महिमा को कहना ये हास्यास्पद बात है दिगम्बर जैन मान्यता के अनुसार कथमपि उत्तम नहीं है।

*कु. सारिका*—माताजी! आपने २५ वर्ष पूर्व चौबीस तीर्थंकर पुस्तक में विदेह देश के कुण्डलपुर को भगवान महावीर की जन्मभूमि लिखा है और अब आप नालंदा के कुण्डलपुर को भगवान महावीर की जन्मभूमि लिख रही हैं इसका मतलब है, कि पहले आप कुछ मानती थीं और अब आप कुछ मानने लगी हैं?

*पूज्य माताजी*—ऐसी बात नहीं है यह एक भ्रम फैलाया जा रहा है। बात यह है कि उत्तरपुराण में विदेह देश के कुण्डलपुर में भगवान महावीर का जन्म माना है और निर्वाणभक्ति में भी यही पाठ आया है भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे और विदेहदेश के इसी कुण्डपुर को ही तिलोयपण्णत्ति, धवला, जयधवला में कुण्डलपुर नाम आया है धवला में कहीं कुण्डपुर नाम भी आया है तो कुण्डपुर और कुण्डलपुर दोनों ही नाम चलते हैं और विदेह देश में चल रहे हैं तो अभी जो यह चर्चा का विषय बन गया है

कि वैशाली में एक क्षत्रियकुण्ड है, वासोकुण्ड है या ब्राह्मणकुण्ड है वह भगवान महावीर की जन्मभूमि है कोई कुण्डग्राम को जन्मभूमि मान रहे हैं इसलिए कुण्डलपुर नाम को ज्यादा अधिक महत्व देना पड़ा। वैशाली में कुण्डग्राम, क्षत्रियकुण्ड, वासोकुण्ड आदि ये भगवान की जन्मभूमि क्यों नहीं हो सकती है इस बात को समझो! सिन्धुदेश में वैशाली नगरी है ऐसा उत्तरपुराण में लिखा है तो देश अलग उसकी राजधानी अलग। वैशाली सिन्धुदेश की राजधानी है और विदेहदेश में कुण्डपुर या कुण्डलपुर नाम आया है तो वो भी एक महत्वपूर्ण एवं समृद्धिशाली राजधानी थी तो दोनों देश स्वतंत्र हैं दोनों राजधानियाँ स्वतंत्र हैं तो एक छोटे से स्थान को या छोटे से मोहल्ले को कुण्डपुर या कुण्डग्राम कह देना यह समझ में नहीं आया। रही बात जिला नालंदा की, तो जिला तो बदलते रहते हैं। नालंदा के समीप है अतः हम तो यहाँ तक समझते हैं कि नालंदा ही कभी नंद्यावर्त महल था हमें अनेक विद्वानों ने भी इस बात को बताया है।

देखो! अभी सम्मेदशिखर बिहार में था अब झारखंड में हो गया। आज वर्तमान में नालंदा जिले से कुण्डलपुर को जाना जा रहा है इसलिए मैंने नालंदा कह दिया। हमारा अभिप्राय तब भी इसी कुण्डलपुर से था और आज भी वही अभिप्राय है विदेह देश के कुण्डलपुर का। कुण्डलपुर शब्द अभी मैंने इसलिए जोर-शोर से उठाया है कि कुण्डलपुर को कुण्डग्राम कहकर छोटे से क्षत्रियकुण्ड या वासोकुण्ड को जन्मभूमि मान रहे हैं इसलिए ये चर्चा का विषय बन गया है लेकिन मेरी मान्यता जो तब थी वही आज है न तब वैशाली में कुण्डपुर को मानने की थी और न आज है।

धवला पु. ९ में पृष्ठ २१ पर लिखा हुआ है कि-आसाढजोण्हपक्खछट्ठीएकुण्डल-पुरणगराहिवणाहवंस सिद्धत्थणरिंदस्सतिसिलादेवीए गब्भमागंतूण अर्थात् आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन कुण्डलपुर के राजा नाथवंशशिरोमणि सिद्धार्थनरेन्द्र, उनकी महारानी त्रिशलादेवी के गर्भ में आए तो इसलिए कुण्डलपुर शब्द धवला, जयधवला, तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों में आया है इससे मेरी समझ में आता है कि कुण्डपुर और कुण्डलपुर दोनों एक ही हैं और ये वैशाली का कुण्डग्राम और इधर के कुण्डलपुर दोनों को अलग-अलग करना और इसको जन्मभूमि न मानकर वैशाली के कुण्डग्राम को जन्मभूमि मानना ये तो दिगम्बर जैन परम्परा से सर्वथा विरुद्ध है। कुछ वर्ष पूर्व भगवती सूत्र श्वेताम्बर परम्परा से यह बात चर्चा में आई थी ऐसा पं. सुमेरुचंद दिवाकर जी ने अपनी महाश्रमण महावीर पुस्तक में भी लिखा है और उसी से वह मान्यता प्राप्त करके कुछ शोधकारों के द्वारा ही वह कुण्डग्राम जन्मभूमि माना जाने लगा है जो कि वैशाली



के अंतर्गत होने से हम लोगों को मान्य नहीं है।

*कु. सारिका*—माताजी! कुछ विद्वानों का कहना है कि राजा सिद्धार्थ राजा ही नहीं थे वे गणतंत्र शासन के एक सदस्य थे इस विषय में आपका क्या कहना है?

*पूज्य माताजी*—बात यह है कि तीर्थंकर के पिता को इस तरह से राजा नहीं मानना उनका बहुत बड़ा अवर्णवाद है। ऐसा तो वे ही कह सकते हैं जिन्हें पाप का कोई भय ही नहीं है।

देखो! धवला की पंक्ति में भी आया है कि-कुण्डलपुरणगराहिव अर्थात् कुण्डलपुर नगर के अधिप यानि राजा णाहवंससिद्धत्थणरिंदस्स नाथवंश के राजा सिद्धार्थ नरेन्द्र-तो इस प्रकार विचार करके देखा जाये तो उनको गणतंत्र का सदस्य और राजा चेटक को गणतंत्र का शासक मानना ये तो एक बहुत ही दुःखप्रद बात है ऐसा नहीं करना चाहिए। वास्तव में विचार करके देखा जाये तो पहली बात, उस समय गणतंत्र शासन ही नहीं था दूसरी बात, जितने अधिक समृद्धिशाली राजा चेटक थे उनसे कहीं अधिक समृद्धिशाली राजा सर्वार्थ और उनके पुत्र सिद्धार्थ थे। राजा सिद्धार्थ इन्द्रों के द्वारा पूज्य महान राजा थे। जिनकी इन्द्र आकर पूजा करे, जिनके माता-पिता को इन्द्र आकर नमस्कार करे और जिनकी इतनी महिमा का बखान करे वह राजा चेटक से छोटे हों यह बात मैं नहीं स्वीकार कर सकती मैं तो कहूँगी कि उस समय उस मध्यलोकस्थ जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में उनके समकक्ष कोई राजा नहीं थे। जिनके यहाँ इस प्रकार १५-१५ महीनों तक रत्नों की वर्षा हुई हो, इन्द्रों ने जिनके पंचकल्याणक महोत्सवों को मनाया हो वो किसी से छोटे थे यह बात मैं कथमपि स्वीकार नहीं कर सकती जो इस बात को स्वीकार करते हैं वे दिगम्बर जैन ग्रंथों का बहुत बड़ा अपलाप करते हैं।

*कु. सारिका*—माताजी! आज आपसे इतनी जानकारी प्राप्त करके बहुत प्रसन्नता हुई। इसका मतलब यह रहा कि वे आधुनिक विद्वान् दिगम्बर जैन आगम की अनदेखी करके अपने लेखों को लिखते हैं इसी कारण ये सब अनर्थ हो रहे हैं। आपके इन समाधानों से यह सारांश निकला है कि दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों को उत्तरपुराण, महावीरपुराण आदि ग्रंथों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए और उसी के आधार से भगवान महावीर के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करना चाहिए।

वंदामि माताजी!

*पूज्य माताजी*—बोधिलाभोस्तु।

# दया के देवता का अवतरण

-लेखक-स्व.पं. सुमेरचंद्र जैन दिवाकर

*भव्यात्माओं! २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन पर दिगम्बर जैन समाज के आगमनिष्ठ वरिष्ठ विद्वान पण्डितप्रवर जी सुमेरुचन्द्र दिवाकर (B.A.L.L.B) सिवनी-म.प्र. द्वारा लिखित सन् १९६८ में प्रकाशित "महाश्रमण महावीर" नामक ग्रंथ (४५० पृष्ठों का) अत्यन्त सुन्दर पठनीय एवं मननीय है। उसी ग्रंथ का कुछ प्रकरण यहाँ पाठकां के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है-सम्पादक*

**कुण्डपुर का भाग्य-** ऋषभनाथ आदि तीर्थंकरों के स्वर्गावतरण के समय जिस प्रकार नभोमंडल से वैभव और विभूति की विपुल वृष्टि द्वारा दारिद्य का दुःख जनता को नहीं उठाना पड़ा था, ऐसा ही सौभाग्य विदेह देश के कुण्डपुर वासियों को प्राप्त हुआ था, जब चौबीसवें तीर्थंकर की अवतरण बेला आई थी। कुण्डपुर अत्यन्त समृद्ध नगर था। हरिवंशपुराण में उसे सुख रूपी जल से परिपूर्ण कुण्ड तुल्य कहा है:-

सुखांभः कुंडमाभाति नाम्ना कुंडपुरं पुरम्।।५-सर्ग२।।

कुण्डलपुर-तिलोय पण्णत्ति में कुंडलपुर नाम आया है:-

सिद्धत्थराय-पियकारिणीहिं णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तर-फग्गुणिरिक्खे वित्तसिया-तेरसीए उप्पण्णो।। ५४६-४।।

इस प्रकार भगवान के स्वर्ग से अवतार लेने का स्थान कुंडपुर अथवा कुण्डलपुर आगम में बताया गया है। देश का नाम विदेह कहा गया है।

कुण्डलपुर जिस विदेह देश का अंग था, उसके विषय में हरिवंशपुराण में लिखा है:

अथ देशोस्ति विस्तारी जंबूद्वीपस्य भारते।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखंडसमः श्रियः।।१-सर्ग२।।

जम्बूद्वीप के भारत वर्ष में विस्तार युक्त विदेह नाम का संदेश है, जो लक्ष्मी से स्वर्ग के खण्ड समान शोभायान होता था।

विदेह देश का कथन वर्धमान चरित्र में आया है, जहां कुण्डपुर नगर था।

श्रीमानथेह भरते स्वयमस्ति धांया। पुंजीकृतो निज इवाखिलकांतिसारः।।
नाम्ना विदेह इति दिग्वलये समस्ते। ख्यातः परं जनपदः पदमुन्नतानाम्।।१-सर्ग १७।।



इस भरत क्षेत्र में संपूर्ण दिग्मंडल में प्रसिद्ध, सत्पुरुषों की उत्कृष्ट निवास भूमि विदेह नाम का देश है, जो संपत्ति से परिपूर्ण था तथा जो स्वयं एकत्रीभूत संपूर्ण कांति का उत्कृष्ट समुदाय रूप शोभायमान था। उस विदेह में विश्व विख्यात कुण्डपुर नगर था "ख्यातं पुरं जगति कुंड-पुराभिधानं" (७-७)

उत्तरपुराण में भी कुण्डपुर को विदेह देश स्थित बताया है। कुंडपुर के राजा सिद्धार्थ के राज भवन के प्रांगण में प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा होती थी। ग्रंथकार के शब्द हैं:-

तस्मिन् षणमास - शेषायुष्या - नाकादागमिष्यति। भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनांगणे।।२५१।।
राज्ञःकुंडपुरेशस्य वसु-धाराप तत्पृथु। सप्तकोटिमणीः सार्द्धा सिद्धार्थस्य दिनं प्रति।।२५२ पर्व ७४।।

जब अच्युतेन्द्र की आयु छह महिने शेष रह गई और वह स्वर्ग से अवतार लेने के सन्मुख हुआ तब इसी भरत क्षेत्र के विदेहदेश में कुंडपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के प्रांगण में प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ मणियों की वर्षा होने लगी थी।

वैदिक काल के प्रारम्भ में आर्य लोग छोटे-छोटे राज्यों को जानते थे। जिसे अभी बिहार कहते हैं, उसमें कारुष, मगध, अंग, वैशाली आदि अनेक देश समाविष्ट थे। आर्यों और वैदिक साहित्य का प्रथम प्रवेश विदेह या उत्तर बिहार में हुआ होगा। यह विदेह नाम ब्राह्मण तथा उपनिषद् साहित्य में सर्व प्रथम दृष्टिगोचर होता है। अंग तथा मगध ये नाम प्राचीन वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। वर्तमान तिरहुत डिवीजन में विदेह अंतर्भूत है। विदेह की राजधानी मिथिला थी। वह नेपाल की तराई में विद्यमान जनकपुरी मानी जाती है। कुछ समय के अनंतर दक्षिण विदेह ने स्वतंत्र राज्य का स्वरूप प्राप्त कर लिया। उसकी राजधानी वैशाली हो गई, जो मुजफ्फरपुर से तेवीस मील पर स्थित है।"[1] (पृष्ठ ५१)

1- In the early Vedic period, the Aryans knew only of small states. Several kingdoms like the Karusha, Magadha, Anga, Vaisali existed in this part of the country now known as Bihar. Aryans and Vedic literature may have first entered 'Videh' or northern Bihar. This name Videh appears first in the Brahman and Upanisadic literature. The names Anga and Magadha occur, however, in early Vedic literature.

Videh corresponds mostly with the modern Tirhut division. The Capital of Videh was Mithila, usually indentified with Janakpuri in the Nepal Tarai. In the course of time Southern Videh developed a new kingdom with its capital of Vaisali, about 23 miles from Muzaffarpur. (Bihar through the Ages, Page 51.)

[1]शक्ति-संगम-तंत्र नाम की १८वीं शताब्दी की रचना में शैवों की तीर्थयात्रा के योग्य ६६ देशों के नाम दिए हैं, उनमें लिखा है, "गंडक नदी के तट से लेकर चंपारण्य पर्यन्त का स्थान विदेह अथवा तिरुभुक्ति कहा जाता था। उसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में कोसी, गंडक तथा गंगा ये तीन बड़ी नदियां है तथा हिमालय की तराई उत्तर की ओर है। इस क्षेत्र में मुजफ्फरपुर, दरभंगा, चंपारन, मुंगेर तथा पुरनिया ये वर्तमान जिले शामिल होते हैं। (पृ. ५५)

इस विश्रुत विदेह देश के कुण्डपुर में त्रिशलानन्दन का अवतरण हुआ था। कुछ लोग कुण्डपुर को वैशाली नगरी का एक अंश कहते हैं। वे मुजफ्फरपुर जिले के हाजीपुर सब-डिवीजन में स्थित बसाढ को वैशाली मानते हैं और उसके अन्तर्गत वर्तमान वासुकुण्ड को कुण्डग्राम कहते हैं।

दिगम्बर जैन आगम में महावीर का नहीं, उनकी जननी प्रियकारिणी–त्रिशला का भी वैशाली से सम्बन्ध पाया जाता है। हरिषेणाचार्यकृत वृहत्कथाकोष में लिखा है कि:-

वज्रविदे देशे विशाली नगरी नृपः, अस्यां केकोस्य भार्यासीत् यशोमतिरिनप्रभा।।१६५।।

विशाली नगरी वज्र देश में कही गई है। वहाँ के राजा केक और उनकी रानी यशोमति थी। उनका पुत्र चेटक था। 'अभूत! साधुकृतानंदश्चेटकाख्यः सुतोऽनयोः'। उनकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। उनकी सुरूप संपन्न सात पुत्रियां हुईं।

भद्रभावा सुभद्रास्य वभूव वनितोत्तमा। अस्या दुहितरः सप्त बभूवु रूपराजिताः।।१६७।।

उनमें सबसे बड़ी कन्या प्रियकारिणी थी। शेष के नाम सुप्रभा, प्रभावती, प्रियावती, ज्येष्ठा, चेलना तथा चंदना थे।

तन्मध्ये प्रथमाप्रोक्ता परमा प्रियकारिणी। द्वितीया सुप्रभाज्ञेया तृतीया च प्रभावती।।१६८।।
प्रियावती चतुर्थी स्यात् सुज्येष्ठा पंचमी परा। षष्ठी च चेलना दिव्या सप्तमी चंदना मता।।१६९।।

वे सातों ही पुत्रियाँ स्वर्ग लोक से चलकर आई थीं। उनका चरित्र विद्वानों के चित्त को हरण करेगा:-

1. An early 18th century work entitled Sakti Sangama Tantra which gives an account of some 66 countries (areas) considered holy by Shaivite pilgrims, have given the following brief account of this area. From the bank of Gandak to the forest of Champaranya the country was called videh or Tirubhukti." It was bounded on the east, west and south by three big rivers, the Kosi, Gandak and Gangas while the Tarai regions formed its northern boundary. (Bihar through the Ages. P.55.)



त्रिदिवादवतीर्णानां सप्तानामपि पुण्यतः।
भविष्यंति चरित्राणि बुधचित्तहराणि वै।।१७०।।पृ. ८३।।

वैशाली का वैभव : - वैशालीपुरी अत्यन्त समृद्ध थी। उसके तीन भाग थे। प्रथम भाग में सात हजार सोने के गुम्बद वाले भवन थे। मध्य में १४ हजार चाँदी के शिखरयुक्त घर थे और अंतिम भाग में २१ हजार ताँबे के गुम्बद वाले भवन थे। (Life of Buddha पृष्ठ ६२)

श्वेताम्बर साहित्य में भगवान को वैशालीय और वैशालिक कहा है (भगवती सूत्र पृ. २३१) ऐसे श्वे. शास्त्रीय उल्लेखों ने अनेक जैनेतर लेखकों तथा विद्वानों को यह कल्पना करने में सहायता दी कि भगवान का जन्म वैशाली में होना चाहिए। इस विषय में शासन का सहयोग मिलने से वैशाली को जन्म स्थान मानने की विशिष्ट परिस्थिति मजबूत बन रही है।

बिहार शासन के द्वारा प्रकाशित 'वैशाली' अंग्रेजी रचना से ज्ञात होता है कि मार्च १९४५ से प्रति वर्ष वैशाली महोत्सव का मनाना प्रारम्भ हो गया है। उस रचना में महावीर भगवान को वैशाली का नागरिक कहा है।[1] इस प्रकार सर्वत्र यह प्रचार हो गया है कि भगवान वैशालेय थे।

भगवान की माता अवश्य विशाला पुरी की पुत्री थीं, किन्तु दिगम्बर आगमानुसार भगवान का जन्म स्थान कुण्डपुर नगर था।

यह सुभाषित गंभीर तथा अर्थपूर्ण है। :-

उत्तमा आत्मना ख्याताः पितुः ख्याताश्च मध्यमाः।
अधमा मातुलात्ख्याताः श्वशुराच्चाधमाधमाः।।

उत्तम पुरुष अपने गुणों के कारण प्रसिद्ध होते हैं। मध्यम पुरुष पिता के कारण प्रसिद्धि पाते हैं, अधम श्रेणी के व्यक्ति अपने मामा के कारण विख्यात होते हैं। अपने श्वशुर के कारण जो प्रतिष्ठा पाते हैं वे महा अधम श्रेणी के व्यक्ति हैं।

तीर्थंकर श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ पुरुष होते हैं। उनका जन्म स्थान ही पूज्य नहीं होता, वह काल भी मंगल हो जाता है, जब उनके पंचकल्याणक हुए हों। ऐसी स्थिति में महावीर भगवान की कुण्डपुरवासी होने से भी प्रसिद्धि नहीं थी, उनके कारण उस स्थान को गौरव मिला। मान सरोवर के कारण हंस को गौरव नहीं मिलता है, हंस के कारण मानसरोवर सन्मान का पात्र बनता है[2] हंस जहाँ भी रहता है,

1- In March 1945...a cultural festival known as the Vaisali Mahotsava was organised in order to pay homage to the ancient cultural traditions of Vaisali. See Bihar-Vaisali Pages 16-17.

वही स्थल महत्वपूर्ण बनता है।

*वंश-परंपरा* – भगवान महावीर के पिता महाराज सिद्धार्थ राजा थे तथा भगवान राजपुत्र थे। भगवान का मातृपक्ष भी राजवंश था। इस प्रकार जाति तथा कुल की दृष्टि से वे महान थे। भगवान के पितामह का नाम था सर्वार्थ तथा सर्वार्थ महाराज की महारानी का नाम श्रीमती था। हरिवंशपुराण में लिखा है :–

सर्वार्थ-श्रीमती-जन्मा तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः।
सिद्धार्थोऽभवदर्काभो भूपः सिद्धार्थ-पौरुषः।।१३-२।।

कुण्डपुर के स्वामी राजा सर्वार्थ तथा रानी श्रीमती से उत्पन्न समस्त पदार्थों का दर्शन करने वाला, सूर्य के समान तेजस्वी तथा समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाला राजा सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ राजा आदर्श शासक थे। जिनसेन आचार्य कहते हैं।

यत्र पाति धरित्रीय - मभूदेकत्र - दोषिणी।
धर्मार्थिन्योपि यंयक्त-परलोकभयाः प्रजा।।१४-२।।

जिस समय सिद्धार्थ नरेश ने पृथ्वी की रक्षा की थी, उस समय प्रजा में कोई दोष नहीं था, हाँ! एक दोष अवश्य था, कि प्रजा परलोक से डरती थी अर्थात् वह आगामी जीवन सुधार के विषय में पूर्ण सावधान थी।

महाकवि के ये शब्द यथार्थ और महत्वपूर्ण हैं–

कस्तस्य तान् गुणानुद्यान्नारस्तुलयितुं क्षमः।
वर्धमान-गुरुत्वं यः प्रापितः स नराधिपः।।१५-२।।

ऐसी सामर्थ्य किस पुरुष में है जो राजा सिद्धार्थ के उन्नत गुणों की तुलना कर सके, क्योंकि अपने गुणों की महिमा से राजा सिद्धार्थ त्रिलोकीनाथ वर्धमान महावीर के पिता बन गए थे। त्रिशलादेवी के पिता चेटक समृद्ध नरेश थे[1]।

भगवान के पिता का हृदय उस क्षण के लिए अत्यंत उत्कण्ठित था कि अब महारानी प्रियकारिणी की कुक्षि से प्रसूत त्रिलोक में अद्वितीय तीर्थंकर स्वरूप पुत्र रत्न का अपने नेत्रों द्वारा दर्शन कर अपने जीवन को कृतार्थ करूं। कुण्डलपुर की जनता भी उस बेला की प्रतीक्षा करती थी जब दया के देवता, पवित्रता की साकार मूर्ति, अप्रतिम पुण्य की विभूति से समलंकृत बाल जिनेन्द्र का मांगलिक जन्मोत्सव होगा।

धीरे-धीरे वह चिरस्मरणीय पवित्र दिवस आ गया जिसे चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के नाम से भव्य जीवन कालमंगल मानकर अत्यन्त आदर भाव से स्मरण करते हैं।

1– यत्रापि कुत्रापि भवंति हंसा, हंसाः मही-मंडलभंडनानि। ह्यनिस्तु तेषां हि सरोवराणां येषां मरालैः सह विप्रयोगः।।



# कुण्डलपुर या वैशालीः एक अनुचिन्तन

लेखक-प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद
(अध्यक्षः अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद)

यह युग नई-नई खोजों का है। प्रतिवर्ष देश में कुछ नये अतिशय क्षेत्र खोज लिए जाते हैं। वैसे भी अतिशय क्षेत्रों की किसी सीमा का उल्लेख आगम में नहीं मिलता। वे असंख्य हो सकते हैं और गाँव-गाँव में हो सकते हैं। खोज अतिशय क्षेत्रों तक सीमित रहे तो गनीमत है, किन्तु क्या किसी एक ही महापुरुष के कल्याणक क्षेत्र या सिद्धक्षेत्र भी एक से अधिक हो सकते हैं, यह विचारणीय है। दुख है कि आज हमारे कुछ समर्थ महानुभावों ने अपने बुद्धि-कौशल से यह कमाल भी कर दिखाया है। हमारे जैन भाई यह नहीं समझा पा रहे हैं कि महावीर का जन्म कहाँ हुआ था-कुण्डलपुर (नालंदा) में अथवा वासुकुण्ड या कुण्डग्राम (वैशाली) में? वह मोक्ष कहां से गये थे-पावापुरी (बिहारशरीफ) या सठियाव गांव (गोरखपुर) से? क्या एक ही व्यक्ति दो स्थानों पर एक साथ जन्म ले सकता है या दो स्थानों से एक साथ प्रयाण कर सकता है? जब अपने अंतिम तीर्थंकर के बारे में यह भ्रान्ति है, तब उनसे पूर्ववर्ती तीर्थंकरों के बारे में तो न जाने ऐसी कितनी नई बातें गढ़ी जा सकती हैं और गढ़ी भी जा चुकी हैं। हम किसी निर्दोष व्यक्तित्व का निर्माण तो नहीं कर पा रहे हैं, किन्तु नई-नई पवित्र भूमियों को खोज निकालने में जरूर माहिर हैं। इन्सानियत का ढ़ाँचा तैयार करने की अपेक्षा किसी भूमि या भूमिखण्ड का नक्शा बदलना आज हमारे लिए ज्यादा आसान हो गया है।

बात सन् १९९३ की है। हम लोग बंगलौर जा रहे थे। हमें श्रवणबेलगोल के महामस्तकाभिषेक महोत्सव में सम्मिलित होना था। कर्नाटक एक्सप्रेस गुण्टकल स्टेशन से आगे बढ़ी तो एक स्टेशन आया अनन्तपुर जौन उससे आगे पड़ा एक दूसरा स्टेशन धर्मपुरम्। इंदौर के एक जैन सहयात्री ने हमसे कहा कि इधर के स्टेशनों के नाम बड़े प्यारे हैं। हम बोले-क्यों नहीं होंगे? इनका संबंध हमारे पन्द्रहवें और चौदहवें तीर्थंकर भगवन्तों से जो है। जरूर यहाँ कभी न कभी उनका प्रवास या विहार हुआ होगा। लोग हमारा मुँह देखने लगे। कुछ ने तो रेल की खिड़की से अपने सिर और हाथ निकालकर इन स्टेशनों को प्रणाम भी किया। कितने भोले हैं हमारे ये जैन भाई! विनोद में कही गई पंडित की बात पर कितना भरोसा करते

हैं। आज जैनियों के इसी भोलेपन का लाभ थोड़े से बौद्धिक आयाम से समर्थ कुछ लोग उठाने में सफल हो रहे हैं। महावीर की जन्मभूमि की नई खोज में तो कोई नामसाम्य भी नहीं है। भाषा विज्ञान के किस नियम से बसाढ़ को वैशाली अथवा वासुकुण्ड या कुण्डग्राम में बदला जा सकता है, क्या इस पर विचार नहीं होना चाहिए था? इस नई खोज के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर बहस का आयोजन किए बिना ही चंद लोगों द्वारा फतवा जारी करना कथमपि उचित नहीं था।

अंग्रेजी व्याकरण का एक नियम है कि किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या स्थान के नाम (Proper Noun) में प्रायः बदलाव नहीं होता। जो जिस नाम से प्रसिद्ध है, उसे उसी नाम से पुकारा जाता है। न तो उसके लिए पर्यायवाची शब्द का प्रयोग होता है और न उसका अनुवाद ही किया जा सकता है। यदि किसी गांव का नाम मक्खनपुर है तो उसे मक्खनग्राम कहना या नवनीतपुर कहना त्रुटिपूर्ण तो है ही, भ्रमोत्पादक भी है। अंग्रेजी में उसे (Butter Villege) कहना भी हास्यास्पद होगा। अंग्रेजों ने लंका का नाम बदलकर 'सीलोन' रख दिया था, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वहां के शासकों ने पुनः उसके मूल नाम को पहले से भी अधिक आदरसूचक बनाकर 'श्रीलंका' कर दिया। यह तो हम ही लोग इतने लचीले हैं कि हमारे संविधान में भारत आज भी इंडिया के रूप में दर्ज है और हमें आज तक इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

बसाढ़ को वैशाली और पुर को ग्राम कहना भी व्याकरणसम्मत नहीं है। सभी जैनग्रंथों में भगवान की जन्मभूमि को कुण्डपुर या कुण्डलपुर के नाम से ही उल्लिखित किया गया है। किसी एक भी आचार्य ने पुर के स्थान पर ग्राम का प्रयोग नहीं किया।

भारत में अनेक जैन तीर्थ ऐसे हैं, जिन्हें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही मानते और पूजते हैं तथा कुछ तीर्थों के बारे में दोनों में मतभिन्नता भी है। महावीर का जन्म कुण्डपुर या कुण्डलपुर में हुआ था, इस विषय में दोनों ही सम्प्रदाय एकमत हैं किन्तु यह नगर कहां पर अवस्थित है, उसको लेकर दोनों में मतभेद है। वैशाली को वीर-जन्मभूमि के रूप में मान्यता प्रदान करने के लिए तो अधिकांश श्वेताम्बर भाई भी तैयार नहीं है। यह तो हमारे चंद नेताओं का उतावलापन ही था, जो उन्होंने कुछ पाश्चात्य और कुछ जैनेतर विद्वानों की इस खोज पर आनन-फानन में अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी।

वैशाली को जन्मभूमि मानना आगमसम्मत तो है ही नहीं, युक्तिसंगत भी नहीं है। आज से ५४ वर्ष पूर्व तक तो वैशाली का नाम पुराणों में पढ़ने को अवश्य मिलता था, किन्तु धरती पर उसका कहीं अस्तित्व ही नहीं था। १४वीं सदी में



मदनकीर्ति ने अपनी कृति 'शासन चतुश्त्रिंशका' में अनेक तीर्थों का वर्णन किया है किन्तु वैशाली कुण्डग्राम का कोई उल्लेख नहीं किया। दूर की बात छोड़िए, गत बीसवीं सदी के प्रथम दशक में प्रकाशित 'प्रसिद्ध-जैनतीर्थ स्थलों का वृत्तान्त' नामक पुस्तक में भी वैशाली का नाम नहीं है। सन् १९६१ में प्रकाशित दिल्ली जैन डायरेक्टरी में पृ. २२५ से २५६ तक भारत के प्रमुख जैनतीर्थों का विवरण संकलित किया गया है। उसमें नालंदा और कुण्डलपुर का उल्लेख तो है परन्तु वैशाली का नहीं। उसमें लिखा है कि नालंदा का पार्श्ववर्ती यह कुण्डलपुर नगर कई बार बना और कई बार नष्ट हुआ। यहाँ हुए पुरातात्विक सर्वेक्षण Acreological servey के फलस्वरूप यहाँ अनेक बौद्ध और जैन मंदिरों के अवशेष और मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। एक नगर बड़गांव का भी उल्लेख है, जहाँ कभी महावीर के समवसरण के आने की बात कही जाती है। यह गांव आज भी यहाँ है।

बताया जाता है कि विशाल अट्टालिकाओं से सुशोभित यह वैशाली नगर ५वीं या ६वीं शताब्दी में पूर्णतया नष्ट हो चुका था। आजादी से पूर्व की किसी भी पुस्तक में वैशाली को भगवान की जन्मभूमि नहीं बताया गया है। सदियों से नालंदा के निकट स्थित कुण्डलपुर को ही यह गौरव प्राप्त होता रहा है। इसकी पुष्टि भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित "भारत के जैन तीर्थ" पुस्तकमाला के बिहार, बंगाल, उड़ीसा से संबंधित द्वितीय भाग से होती है। यहां शताधिक वर्षों से चैत्र सुदी १२ से १४ तक भगवान महावीर स्वामी का जन्मकल्याणक महोत्सव मनाने के लिए भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से मेला भी आयोजित किया जाता रहा है। बाद में सन् १९५१ में स्व. श्रीमान साहू शांतिप्रसाद जी द्वारा अचानक वैशाली को जन्मभूमि के रूप में मान्यता दिये जाने के बाद जानबूझकर कुण्डलपुर की उपेक्षा करने का एक सोचा-समझा सिलसिला शुरू हुआ, जो चिंतनीय है। इस अविचारित खोज के बाद भी ग्रंथमाला के विद्वान् सम्पादक स्व. पं. बलभद्रजी द्वारा यह लिखा जाना बहुत महत्वपूर्ण है-'शताब्दियों से जिस कुण्डलपुर की एक जैनतीर्थ के रूप में मान्यता रही है, उसको भविष्य में भी तीर्थ माना जाता रहेगा।

तीर्थक्षेत्र कमेटी में अचानक यह बदलाव केन्द्र सरकार से आर्थिक अनुदान पाने के लालच में आया अथवा अपनी एक नई खोज की आवश्यकता है। पुराने तीर्थों की उपेक्षा और नई तीर्थों के निर्माण के प्रति जागा मोह हमारी परम्परा बन गई है। स्व. पं. नाथूराम प्रेमी ने ठीक ही लिखा था-'प्राचीनता की रक्षा करने

में जैनसमाज उतना ही असावधान रहा है, जितना नवीन निर्माण करने में कटीबद्ध। जहां जैनत्व का कोई चिन्ह तक कभी नहीं पाया गया, वहां भी नए-नए तीर्थ बनते हुए देखने से उनकी यह बात प्रमाणित भी हो रही है।

कुण्डलपुर के जैन मंदिर और मूर्तियों के दर्शन हमने सर्वप्रथम सन् १९४४ या ४५ में अपने पूज्य पिताजी के साथ किए थे। तब हमारी उम्र लगभग १२ वर्ष की रही होगी। उसके बाद भी दो-तीन बार हमारा वहां जाना हुआ है। तभी से निरन्तर भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में हम उसका परिचय प्राप्त करते रहे हैं। अ. भा.दि. जैन परिषद पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित "जैन तीर्थ दर्शन" का सन् १९९८ का नया संस्करण हमारे पास है। उसमें लिखा है-

'कुण्डलपुर नालंदा को ही भगवान महावीर की जन्मभूमि माना जाता रहा है, किन्तु अब यह श्रेय वैशाली के कुण्डग्राम को प्राप्त हो गया है।' यह श्रेय वैशाली के कुण्डग्राम को प्राप्त हो गया के स्थान पर यह श्रेय चंद लोगों ने उसे दे दिया है, यह लिखना ज्यादा उचित होता।

कुण्डलपुर को जन्मभूमि मानने की अपनी पुरानी धारणा को बट्टे खाते में डालने के पीछे क्या कारण था? क्या तीर्थक्षेत्र कमेटी को पूरे समाज को यह नहीं बताना चाहिए था? खैर, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। कमेटी को अपनी इस नई खोज का यथाशीघ्र पुनर्मूल्यांकन करते हुए 'जब जागो, तभी सवेरा' की कहावत को चरितार्थ करना चाहिए।

इतिहास को बदलने की चेष्टा एक बड़ी भूल है। यह निर्विवाद है कि महावीर का जन्म वैशाली में नहीं हुआ था। उनकी माता प्रियकारिणी अवश्य विशाल नगरी वैशाली के महाराज चेटक के यहां जन्मी थीं। इस तरह वैशाली महावीर की ननिहाल थी। उन्हें वैशाली का राजकुमार कहना या लिखना असंगत ही नहीं, अक्षम्य भी है। महाराजा चेटक के दस पुत्र थे। योग्य पुत्रों के रहते हुए (श्वेते) पुत्री के पुत्र को राजकुमार कहने की प्रथा तो कहीं भी देखने में नहीं आती। महावीर जैसा प्रतापी पुत्र उत्तमा आत्मनाख्याताः की श्रेणी में गणनीय रहा है, उन्हें 'मातुलातुख्याताः' की अधम श्रेणी में रखने की भूल का हमें तुरंत परिष्कार करना चाहिए।

सभी पुराणों में लिखा है कि कुण्डलपुर एक स्वतंत्र और प्रभावशाली गणराज्य था, उसके वैभव का प्रचुर वर्णन भी जैनशास्त्रों में पाया जाता है। उसके अधिपति महाराज सिद्धार्थ भी एक शक्तिशाली प्रतापी और स्वतंत्र राजा थे। कुण्डलपुर को वैशाली के एक सन्निवेश के रूप में स्वीकार करने से तो उसके स्वतंत्र राज्य होने



पर ही प्रश्नचिन्ह लग जाएगा तथा लोगों को लगेगा कि महाराजा सिद्धार्थ अवश्य ही कोई साधारण राजा थे और उनका अपना कोई आभामण्डल भी नहीं था। वैशाली के राजा के कारण ही उनका मान-सम्मान था। हमें तो स्वप्न में भी ऐसा सोचना इष्ट नहीं है। पौराणिक वर्णन भी हमें इसकी अनुमति नहीं देते।

श्वेताम्बर ग्रंथ 'सूत्रकृतांग' आदि में महावीर को वैशालिक कहा गया है। इसका यह अर्थ निकालना ठीक नहीं होगा कि वह वैशाली के निवासी थे। श्वेताम्बर अंग-साहित्यके सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य शीलांक ने महावीर को वैशालिक कहे जाने के पीछे जो तर्क दिये हैं, वे विचारणीय हैं। वे लिखते हैं-

'विशाला जननी यस्य, विशालं कुलमेव वा। विशालं वचनं चास्य, तेन वैशालिको जिनः।'

अर्थात-१. जिनकी माँ विशाला नगरी की थीं, २. जिनका कुल विशाल था तथा ३. जिनके वचन भी विशाल थे, वह कहलाते थे वैशालिक जिन।

वाह रे बुद्धि-प्रवण दिगम्बरो! तुमने तो उन्हें वैशाली का निवासी ही बना दिया। वैशाली का राजकुमार कहकर उनके मामाओं के अधिकार पर भी पानी फेर दिया। क्या महावीर जैसे उदात्त पुरुष से भी ऐसी अनधिकृत चेष्टा की उम्मीद की जा सकती है? नहीं, कभी नहीं। वह वैशाली के नहीं थे, इसे स्वीकार करना ही इस ऐतिहासिक भूल का प्रायश्चित्त होगा।

महावीर की जन्मभूमि के संदर्भ में यदि बौद्ध ग्रंथों या श्वेताम्बर साहित्य के आधार पर निर्णय लिया जाएगा तो फिर अनेक नई उलझनें उत्पन्न होंगी। अनेक आगमविरुद्ध प्रसंगों को मानने की विवशता भी हमारे सामने उपस्थित हो सकती है। उनके अनुसार माता त्रिशला महाराज चेटक की बहन थी, जबकि हमारे अनुसार वह उनकी पुत्री थीं। हमारी मान्यता है कि महावीर अपने पिता सिद्धार्थ के अकेले पुत्र थे, जबकि उनके अनुसार उनका एक भाई नंदिवर्धन भी था। श्वेताम्बर यशोदा से उनका विवाह होना मानते हैं और कहते हैं कि उनकी एक पुत्री भी थी, किन्तु हम इसे सिरे से नकारते हैं। श्वेताम्बर ग्रंथों में लिखा है कि बसाढ़ के निकट दो कुण्डग्राम थे एक ब्राह्मण कुण्डग्राम और दूसरा क्षत्रिय कुण्डग्राम। उनके अनुसार महावीर का जीव स्वर्ग से प्रथम ब्राह्मण कुण्डग्राम के ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा की कोख में आया और बाद में ब्यासी रात्रियों के बाद एक देव द्वारा उन्हें क्षत्रिय कुण्ड के महाराज सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला के कोख में स्थापित किया गया। क्या गर्भापहरण की इस बेतुकी बात का भी हम समर्थन करेंगे? हमारे युगपुरुष

महापुरुष के वास्तविक पिता कौन थे? इस प्रश्न का क्या उत्तर हमारे पास होगा? कोई निर्णय करने से पहले इन सब बातों पर भी विचार करना चाहिए था।

महावीर की जन्मभूमि का निर्णय दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार ही हो सकता है और होना भी चाहिए। सभी दिगम्बर शास्त्र और पुराण उनकी जन्मभूमि कुण्डपुर या कुण्डलपुर को ही मानते हैं कहीं कोई विवाद नहीं है। विवाद तो नए अनुसंधानकर्ताओं ने अपनी-अपनी बौद्धिक अटकलों से उत्पन्न कर दिया है। जहाँ तक दो कुण्डग्रामों की बात है, भगवती सूत्र का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है-

'तीसेणं णालिंदा वाहिरियाए अदूरसामंते एत्थणं कोल्लाए णामं सण्णिवेसे होत्था सण्णिवेस बज्जओ। तत्थणं कोल्लाए सण्णिवेसे बहुलेणाम माहणे परिवयई।''

इस कथन से स्पष्ट है कि वैशाली और नालंदा दोनों ही स्थानों के समीप कोल्लाग सन्निवेश और दो-दो कुण्डग्राम थे। इस उल्लेख के आधार पर कुण्डग्राम नालंदा को जन्मभूमि मानने में कोई अड़चन शेष ही नहीं रहती। वैशाली को महावीर की जन्मभूमि तो माना ही नहीं जा सकता। यह धारणा सर्वथा अस्वीकार्य एवं निर्मूल है। श्री पी.सी. राय चौधरी ने अपनी एक पुस्तक Jainism in Bihar में लिखा है-दिगम्बर सम्प्रदाय वालों ने नालंदा से दो मील दूर कुण्डलपुर नामक स्थान को महावीर की जन्मभूमि माना है।' श्री राधाकृष्ण चौधरी और श्री नरेशचंद मिश्र भी वैशाली को जन्मभूमि मानने को तैयार नहीं हैं। ये विद्वान इस संदर्भ में पुनर्मूल्याकंन किए जाने पर जोर देते हैं।

सर्वश्री हर्मन जैकोबी, हार्नले और बिसेंट स्मिथ जैसे पाश्चात्य विचारकों ने प्राचीन वैशाली के कोटिग्राम से कुण्डग्राम के विकास की बात कही है, जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से ठीक नहीं है। प्रो. रघुवीर प्रसाद सिंह ने लिखा है-'कोटि शब्द से कुण्डग्राम का विकास किसी भी प्रकार संभव नहीं है।'

के.के. एम. कॉलेज, जमुई के प्रोफेसर डॉ. श्यामानंद प्रसाद ने अपनी शोधपरक पुस्तिका 'महावीर का जन्मस्थान' में लिखा है-'महात्मा बुद्ध ने कोटिग्राम में निवास करते समय दससुत्तों का उपदेश दिया था, ऐसा उल्लेख संयुक्त निकाय में आता है। इससे स्पष्ट है कि यदि महावीर के समकालीन बुद्ध के समय में इस संस्थान का नाम कोटिग्राम ही था तो महावीर के लिए यह कुण्डग्राम नहीं हो सकता है।'

एक तथ्य यह भी है कि लगभग आधी सदी तक वैशाली को महावीर की जन्मभूमि के रूप में प्रचारित और प्रसारित किए जाने के बाद भी जैनों का उसके साथ जुड़ाव नहीं हो सका है। वहां हर वर्ष महावीर जयंती का आयोजन भी सरकार की



वैशाखी के द्वारा होता आ रहा है। जैनसमाज स्वतंत्ररूप से वहां कोई आयोजन नहीं करता है। इसके विपरीत बिहार के तीर्थों की यात्रा करते समय सभी जैन बंधु कुण्डलपुर अवश्य जाते ही हैं। भगवान महावीर एवं उनके साथ जुड़ी विभूतियों से संबंधित अनेक तीर्थ राजगृही, पावापुरी, गुणावा, नवादा आदि कुण्डलपुर के निकट ही हैं। वैशाली के आस-पास ऐसे धार्मिक महत्व के स्थानों व वातावरण का नितान्त अभाव है, जो लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित कर सके। यदि महावीर ३० वर्ष तक वैशाली में रहे होते हो वहां अनेक नए पुण्यक्षेत्र विकसित होने चाहिए थे। इसलिए वैशाली आज तक उपेक्षित रही और कुण्डलपुर की तुलना में भविष्य में भी उपेक्षित रहेगी।

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने देर से ही सही, कुण्डलपुर के विकास की प्रेरणा देकर एक सामयिक महत्व का कदम उठाया है। पहले तो हम भी चौंके थे कि यह एक नया विवाद क्यों खड़ा किया जा रहा है? किन्तु जब हमने उनके और प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के विचार पढ़े तथा इस संदर्भ में उनके साथ विचार-विमर्श हुआ तो हमें लगा कि उनका यह मिशन उपेक्षणीय नहीं है। जैनागम में कुण्डलपुर के पक्ष में यदि प्रमाण देखना हो तो पाठकों को त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा प्रकाशित ''महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर'' शीर्षक पुस्तक मंगाकर पढ़नी चाहिए। वासुकुण्ड, कुण्डग्राम, बसाढ़ जैसे शब्दों की जन्मभूमि के साथ संगति बिठाने के द्राविणी प्राणायाम का परिचय उन्हें स्वयं ही मिल जायेगा। पुनरावृत्ति से बचने के लिए हम उन्हें यहां दोहराना उचित नहीं समझते।

आगम और युक्ति दोनों से ही यह सिद्ध होता है कि वैशाली एक इतिहासप्रसिद्ध महानगर रहा है, किन्तु महावीर की जन्मभूमि होने का एक भी प्रमाण हमें अपने आर्षग्रन्थों में नहीं मिलता। वैशाली में कुछ बनाना ही हो तो कोई शानदार स्मारक बनाएं, किन्तु उसे महावीर-जन्मभूमि के रूप में प्रचारित न करें। जब जीव सोवे सब समझो सुपन सत्य, वही झूठ लागै जब जागे नींद खाई कैं-पं. प्रवर बनारसीदास की इन पंक्तियों के अनुसार वैशाली के संदर्भ में कुछ लोगों द्वारा देखे गये स्वप्न की असलियत अब हमारे सामने आ चुकी है। अब पुनः कोई चूक हमसे नहीं होनी चाहिए।

प्रसिद्ध नाटककार 'गैलीलियो' की इन पंक्तियों के साथ हम अपनी बात समाप्त करते हैं-

''जो जब तक सच्चाई नहीं जानता, तब तक केवल अज्ञानी कहलाता है, किन्तु जानने के बाद भी जो सत्य को स्वीकार नहीं करता, वह अपराधी है।''

भगवान महावीर जन्मभूमि-प्रकरण

# भगवान महावीर के जन्मस्थान का निर्णय दिगम्बर मतानुसार हो

-उमेशचन्द्र जैन, फिरोजाबाद

हमारे दिगम्बर जैन समाज की यह मान्यता ही नहीं अपितु अटूट आस्था है कि हमारी जिनवाणी का हर कथन और प्रत्येक शब्द चाहे वह सिद्धान्त विषयक हो या फिर व्याकरण, न्यायशास्त्र, या त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों के जीवन चरित्र के रूप में हो, वह पूर्णतः अर्हन्तप्रभु, सर्वज्ञ केवली भगवन्तों का ही कथन है। समवसरण में सर्वज्ञ प्रणीत कहे गये यह शब्द क्रमशः गणधर देवों, श्रुतकेवलियों और अंगधारक उन महान आचार्यों से प्राप्त होने वाले ज्ञानाधार से ग्रहणकर हमारे पूर्वाचार्यों द्वारा लिपिबद्ध किये गये हैं और यही ज्ञानाधार सदियों से जिन परम्परा में जिनवाणी या जिनागम कहलाता है। भगवान महावीर के निर्वाण को आज २५ सौ वर्षों से भी अधिक समय पूर्ण होने जा रहा है। इन ढाई हजार वर्षों से हमारी श्रद्धा, आस्था पूर्वाचार्यों के कथन से जुड़ी रही है। जब किसी सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण या अन्य कथानकों, विषयों पर अगर हम डगमगाए या दिशाभ्रमित हुए, तब-तब हमें हमारी इस जिनवाणी से ही समाधान प्राप्त होता रहा है। हजारों हजार वर्षों से यह जिनवाणी ही हमारी मार्गदर्शक रही है, इस जिनवाणी के महत्व का वर्णन करते हुए आचार्य पद्मनंदी जी ने कहा है-

सम्प्रत्यस्ति न केवली कल कलौ त्रैलोक्य चूड़ामणि,
स्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रै जगद्योतिका।
सद रत्नत्रय धारिणो यतिवरा स्तेषां समालम्बनं,
तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः।।

अर्थात् इस वर्तमान काल में हमारे क्षीण पुण्य के कारण हमें साक्षात् अर्हन्त केवली भगवन्तों का चरण सानिध्य प्राप्त नहीं है, किन्तु उनकी वाणी आज भी हमारे इस भरत क्षेत्र को आलोकित किये हुए है। इस जिनवाणी के कारण ही तो यह रत्नत्रय धारक मुनिराज हमारे बीच में विद्यमान हैं, इन रत्नत्रय धारक



मुनिराजों का पूजन ही जिनवाणी का पूजन है, और जिनवाणी का पूजन ही साक्षात् अर्हन्तों का पूजन है। जिनवाणी के प्रति विश्वास का यह अटल और अटूट रिश्ता ही विश्व भर में संख्या में नगण्य इस जैन वीतराग संस्कृति को जीवंत किये हुए है। अपनी शोधपूर्ण दर्शन धारा के चलते ही वीतराग जैन दर्शन को विश्व की अन्य दर्शन धाराओं पर श्रेष्ठता प्राप्त है।

सर्वज्ञ प्रणीत इस वीतराग जैन चिन्तन की मान्यता है कि इस अनंत संसार सागर में प्रत्येक जीव पुरुषार्थ से स्वयं के कर्मबंधों को नष्ट कर इस भव सागर से मुक्त हो सकता है। नियम है कि मोक्षमार्ग का यह पुरुषार्थ भव्यजीव कर्मभूमियों में ही कर पाता है। ऐसे पुण्यशाली पुरुषार्थी जीव कर्मभूमि में उत्तम कुल परिवार में मनुष्य (पुरुष) जन्म लेकर अपना लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त करते हैं। जिन कर्मभूमियों से उन भव्यात्माओं के मोक्षद्वार खुलते हैं, जिनागम में ऐसी यह पंद्रह कर्मभूमियाँ ढाईद्वीपों में वर्णित हैं। इन ढाई द्वीपों में यह कर्मभूमियाँ क्रमशः पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह क्षेत्रों के नाम से जानी जाती हैं। पाँच विदेहक्षेत्रों में काल आदि की सदैव अपरिवर्तित स्थिति रहती है और यहाँ मोक्षमार्ग सदैव सर्वकाल नियमित रहता है, इसके विपरीत पाँच भरत और पांच ऐरावत क्षेत्रों में कालचक्र समान रूप से परिवर्तन-शील है। इन क्षेत्रों के काल परिवर्तन के छः विभाजन कालों में से एक विशेष कालखंड में भव्य पुण्यात्मा जीव अपनी संयम साधना से अपना लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्त करते हैं। उस काल विशेष में प्राणियों की शरीर संरचना, संहनन, संस्थान आदि सब कुछ विशेष होते हैं। भरत-ऐरावत के इन सभी दशों क्षेत्रों में उस कालविशेष में जहाँ अनन्त जीव अपने कर्मबंधों को काटकर मोक्षगामी बनते हैं वही इन दश क्षेत्रों में उसकाल में त्रेषठ विशिष्ठ शलाका पुरुषों का जन्म होता है। इन त्रिषष्ठि शलाका पुरुषों में तीर्थ धर्मचक्र के प्रणेता २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण होते हैं जैनागम में तीर्थंकरों का जन्म उस काल की विशेष घटना होती है। आगम कथन है कि मोक्षमार्ग का कोई भव्य पुरुषार्थी जीव अपने पुरुषार्थ क्रम से पूर्व भव में केवली भगवन्त के पादमूल में नामकर्म की तीर्थंकर प्रकृति के महान पुण्य का बंध करता है, ऐसा पुण्यशाली जीव जब अपने तीर्थंकर जन्म से पूर्व की अपनी आयु को पूर्ण कर अपनी तीर्थंकर पर्याय की मां के गर्भ में आता है तब गर्भ में आने के ६ माह पूर्व ही सौधर्म इन्द्र को अपने अवधिज्ञान से यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक पुण्यात्मा जीव ६ माह बाद अपनी वर्तमान आयु पूर्ण कर कर्मभूमि के

अमुक भरत या ऐरावत क्षेत्र के इन नगर विशेष के अमुक राजपरिवार में जन्म लेने वाला है। सौधर्म इन्द्र अपने ज्ञानबल से भविष्य के उस घटनाक्रम को प्रत्यक्ष जान लेता है और यहीं से तीर्थंकर मां के सोलह स्वप्नों से लेकर उनके गर्भ, जन्म कल्याणक की वह सब विशेषताएं प्रारंभ हो जाती हैं, जिन्हें हम जिनागम में पढ़ते या सुनते आये हैं। हमारे नित्य नियम पूजन पाठ की क्रिया ही इन पंचमंगल पाठ से प्रारंभ होती है। इन पांचों कल्याणकों को हमारे सभी आचार्यों ने एकमत से मंगल घटनाएं कहा है। पंच कल्याणकों की यह तिथियां मंगल तिथियां मानी जाती हैं, मंगलाष्टक पाठ में इन पंच मंगलों को नमन करते हुए निज-पर के मंगलमय जीवन की कामना करते हैं। यहां यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि तीर्थंकर भगवन्तों के गर्भकाल में पूर्व से लेकर उनके महानिर्वाण तक का इतिहास क्या है, इसे प्रत्येक जैन भलीभांति जानता है।

यह जैनागम (यहां जैनागम का तात्पर्य हमारा वीतराग दिगम्बर आचार्यों के कथन से है) हमारी मान्य परम्पराओं, आस्थाओं, जीवन दर्शन की सूक्ष्म विवेचनाओं का एक प्रमाणित दस्तावेज है। आज हजारों हजार सालों से हमारे आचार्यों, विद्वानों और मनीषियों के साथ ही आस्थावान देव, शास्त्र, गुरु ने इसे सहेज कर रखा है। इसके साथ न तो उन्होंने कोई छेड़छाड़ की और न किसी छेड़छाड़ के प्रयास को स्वीकार किया। पिछले ढाई हजार वर्षों में लोगों ने इसमें अपने निजी विचार स्थापित करने के प्रयास किये, उन्हें उनके विचारों को समर्थन देने वाले कुछ लोग भी मिलते रहे किन्तु मूलधारा उससे कहीं प्रभावित नहीं हुई। बदलाव की विचारधारा ने तेरहपंथ, बीसपंथ, तारणपंथ से लेकर काष्ठासंघ, द्राविड़ संघ आदि के रूप में समय-समय पर अनेक विचारधाराओं को जन्म दिया। यहीं तक नहीं कुछ लोगों ने वस्त्रधारक विचारकों में सद्गुरुदेव और भावी तीर्थंकरों, गणधरों की कल्पनाएं भी गढ़ लीं, किन्तु उन्होंने भी तीर्थंकरों की महत्ता, महानता और उनकी विशिष्टताओं पर कहीं कोई शंका या प्रश्न खड़े नहीं किये। पर आधुनिकता से जुड़ा हमारा आज का बदलाव अब अपने पूर्वाचार्यों के कथन से हटकर आधुनिक इतिहासकारों, शोधकर्ताओं पर अधिक विश्वास करने लगा है। आज हमारा विश्वास सात समुन्दर पार के लोगों पर सहज भरोसा करने लगता है। दिगम्बर जैनाचार्यों से अधिक हमें आज याकोबी, डा. हार्नले या श्वेताम्बर व बौद्ध ग्रंथकारों पर आस्था होने लगी है। आज हमारे लिए आचार्य वीरसेन, जिनसेन, पूज्यपाद, गुणभद्र, आदि सभी अप्रमाणित और महत्वहीन से



होने लगे हैं। हम यह भी भूल जाना चाहते हैं कि भगवान महावीर इस वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर अरिहंत परमेष्ठी थे। तीर्थंकर भगवन्तों की अपनी श्रेष्ठ कुलपरम्परा होती है। वह अपने मातृकुल या किसी अन्य की उधार ली गयी कुल परंपरा का मुखापेक्षी नहीं होता है। उसका स्वयं का तेज, बल और प्रताप इस समस्त भूमण्डल को आलोकित करने वाला होता है। अगर हमने इन सब कथनों को न भुलाया होता तो हम आज भगवान महावीर के जन्मस्थान की खोज, उनके मातृकुल नगर वैशाली में या उसके किसी मुहल्ले, उपनगर में नहीं कर रहे होते। क्या कहीं हम महावीर को वैशाली में जन्मा स्वीकार करके दिगम्बर आचार्यों के कथन को अस्वीकार करने की भूमिका का सूत्रपात तो नहीं कर रहे हैं? भगवान महावीर के नाना महाराज चेटक की राजधानी वैशाली या उसके उपनगर मुहल्ले में महावीर के जन्म को स्वीकारने का अर्थ है महावीर की कुल परम्परा को अस्वीकार कर देना। क्या ऐसा कर देने पर महावीर की सर्वज्ञता अर्हंतता पर प्रश्न चिन्ह खड़े नहीं होंगे? अभी तक तो हम अपने पूर्वाचार्यों के हर कथन को यह कह कर ही स्वीकार करते आए हैं कि यह भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से निकले हुए शब्द हैं। इनमें बदलाव करने से पूर्व क्या हमने कभी यह विचार किया कि आस्था की बुनियाद से निकाली गई एक ईंट विश्वास के भवन को धराशायी करने में निमित्त बन सकती है? आस्था या विश्वास के आधार को जब चोट पहुँचाई जाती है, तब कोई धर्म, समाज या चिन्तन अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाता। कुछ भी कहने या करने से पहले सभी को तीर्थंकरों के सम्पूर्ण जीवन परिवेश को संज्ञान में रखना होगा, जो तीर्थंकरों को सामान्य जनों से अलग और अतिविशिष्ट दर्शाता है।

प्रथमानुयोग हमारी आस्था की बुनियाद है, अगर हम उसे ही शंका और अविश्वास के घेरे में लाकर खड़ा कर देंगे, तब हमारे पास करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग की प्रामाणिकता का क्या आधार होगा? हमारे सभी पूर्वाचार्यों ने तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों की चर्चा उनके चरित्र ग्रन्थों में की है,उन्हें तीर्थ की संज्ञा दी है। भगवान महावीर के जन्मस्थान कुण्डलपुर का विस्तार से कथन है। कहीं उसे वैशाली से जोड़कर नहीं कहा गया है। यदि महावीर वैशाली में जन्मे थे जैसा आज प्रचारित किया जा रहा है तब हमारे आचार्यों ने वैशाली के साथ यह न्याय क्यों किया? किसी भी आचार्य या ग्रन्थकार द्वारा उसकी चर्चा तक न

करना एक विचारणीय प्रश्न है। इसके साथ यह भी विचारणीय होना चाहिए कि आज बिहार के जिस बसाढ़ ग्राम को वैशाली कहा जाता है, उस क्षेत्र के लोगों को यह याद नहीं रहा कि यह बसाढ़ नहीं वैशाली है। इस इतिहास प्रसिद्ध नाम की याद विदेशी खोजकर्ताओं के द्वारा दिलाने पर उन्हें याद आया कि यह बसाढ़ नहीं वैशाली है न ही उन्हें याद रहा कि भगवान महावीर का जन्म किस स्थान पर हुआ? उस स्थान को स्थानीय लोगों ने २६ सौ वर्षों से हल चलाकर जोता या बोया तक नहीं है। क्या यह दोनों ही कथन आपस में विरोधाभास नहीं रखते?

हमारी पांच दशाब्दी की उदासीनता ने हमारी दिगम्बर मान्यता तथा हमारे वीतराग चिन्तन को बहुत हानि पहुँचाई है। इस बीच हमारे कुछ मान्य विद्वानों ने महावीर का श्वेताम्बरीकरण ही कर दिया। महावीर के लिए लिखे इस नव साहित्य के लेखकों ने यह विचार ही नहीं किया कि यह घालमेल वाला साहित्य हमारी नई पीढ़ी को कितना भ्रमित कर देगा। दिगम्बर साहित्य में इस बाहरी मिलावट का ही परिणाम है कि आज हमें वैशाली और कुण्डलपुर में कोई अन्तर ही दिखाई नहीं देता। इस घालमेल के प्रति हमारे पूज्य आचार्यों, मुनिराजों और विद्वानों का मौन भी अखरने वाला है। यह एक शुभ संकेत है कि अभी हाल में इंदौर से नेमावर गये कुछ पत्रकार बंधुओं से चर्चा करते हुए पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने इस विषय को गंभीरता से अनुभव किया और कहा कि हमारे तीर्थस्थानों आदि का निर्णय हमारे दिगम्बर आचार्यों के कथनानुसार होना चाहिए।

पूज्य आचार्य श्री ने कहा कि धवला, जयधवला के टीकाकार पूज्य आचार्य वीरसेन महाराज का कथन ही हमारे लिए प्रामाणिक होना चाहिए। इसी चर्चा में पूज्यमुनि योगसागर जी ने कहा कि आचार्य पूज्यपादस्वामी ने भी निर्वाणभक्ति में कुण्डलपुर ही महावीर का जन्म स्थान कहा है। इस आलेख में हमारा आशयमात्र भी इतना ही है कि हम अपने तीर्थस्थानों या अन्य किसी विषय पर उत्पन्न हुई शंका का समाधान अपने दिगम्बर आगमानुसार और अपने पूर्वाचार्यों के कथनानुसार ही करें। श्वेताम्बर, बौद्ध या अन्य इतिहासकारों के कथन हमारी वीतराग अवधारणा में विसंगतियां तो उत्पन्न करेंगे ही, साथ ही हमारी भविष्य की पीढ़ी को भ्रमित भी करेंगे। हमें पूरा विश्वास है कि हमारे आचार्य, मुनिराज, मनीषीविद्वान इस जन्मभूमि प्रकरण का सम्यक् समाधान भी अपनी श्रेष्ठतम श्रुत परम्परा के आधार पर करने में सफल और समर्थ होंगे।



# वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थंकरों की १६ जन्मभूमियाँ

१. **अयोध्या ( उ.प्र. )**—५ तीर्थंकर— श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ, श्री अभिनंदननाथ, श्री सुमतिनाथ, श्री अनंतनाथ भगवान

२. **श्रावस्ती ( बहराइच-उ.प्र. )**— श्री संभवनाथ भगवान

३. **कौशाम्बी ( उ.प्र. )**— श्री पद्मप्रभु भगवान

४. **वाराणसी ( उ.प्र. )**— श्री सुपार्श्वनाथ, श्री पार्श्वनाथ भगवान

५. **चन्द्रपुरी ( वाराणसी )**— श्री चन्द्रप्रभु भगवान

६. **काकन्दी ( उ.प्र. )**— श्री पुष्पदंतनाथ भगवान

७. **भद्रिकापुरी** — श्री शीतलनाथ भगवान

८. **सिंहपुरी ( वाराणसी )**— श्री श्रेयांसनाथ भगवान

९. **चम्पापुरी ( भागलपुर-बिहार )** — श्री वासुपूज्यनाथ भगवान

१०. **कम्पिलपुरी ( फरूखाबाद-उ.प्र. )**— श्री विमलनाथ भगवान

११. **रत्नपुरी ( फैजाबाद-उ.प्र. )** — श्री धर्मनाथ भगवान

१२. **हस्तिनापुर ( मेरठ-उ.प्र. )**— ३ तीर्थंकर— श्री शांतिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री अरनाथ भगवान

१३. **मिथिलापुरी** — श्री मल्लिनाथ, श्री नमिनाथ भगवान

१४. **राजगृही ( नालंदा-बिहार )**— श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

१५. **शौरीपुर ( बटेश्वर-उ.प्र. )**— श्री नेमिनाथ भगवान

१६. **कुण्डलपुर ( नालंदा-बिहार )**— श्री महावीर भगवान